समर्पण

परम पूज्य संविग्नशाखाग्रणी सकलागमरहस्यवेदी
सुविहिताचार्य १००८ पूज्य गुरुदेव श्री

विजय हर्षसूरीश्वरजी महाराज

卐

अनादि भवचक्रमां अज्ञानतिमिरथी भरेला एवा
मारा आत्माने आपे सर्वज्ञ शासननुं दर्शन
करावी मनुष्य भव ए मोक्षस्थाननी
मोसम रुप छे. ते समजावी
चारित्र मार्गमां मने जोडी
उपकार कर्यो, ते निःसीम उपकारी
आपने आ ग्रंथ
समर्पण करुं छुं

—: समर्पक :—
पं. मंगलविजय

श्री उपदेश प्रासाद छपाववा मददगारनुं
यादि पत्र

६००) पादरलीवाला शा. बाबुलाल तिलोकचंदजी

६००) पादरलीवाला संघवी ताराचंद कस्तुरजी

५००) शामलानी पोलना तपागच्छ उपाश्रय ज्ञानखाता
तरफथी ह. शेठ कचराभाइ हठीसंग

४००) कवराडा वाला संघवी वरधीचंद कस्तुरजी तरफथी
शनिश्चरजी खाताना

३००) खुशालभुवन उपाश्रय ज्ञान खाताना
ह. सुतरीया भोगीलाल मगनलाल

३००) तखतगढ वाला शेठ नथमल पुनमचंदजी

३००) शा हिंमतलाल खीमराज अमदावाद आस्टोडीया
(रंगाटी कापड बजार)

३००) मरुधर संघ तरफथी

१४०) शा. कपुरचंद जेठाजी तखतगढ वाला

१७५) सीवनी ज्ञानखाताना ह. शेठ मणीलाल पोपटलाल

१५३) शीवगंज संघवी फतेहचंदजी झवेरचंदजी तथा
छोगमलजी

५१) पंन्यास गंभीरविजयजीना उपदेशथी सीवनी वाला
श्रावक पेमरचंदजी मालुन

—: प्रस्तावना :—

आ अपूर्व ग्रन्थना त्रण भागो पूर्ण कर्या पछी श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालय चोथा भागनुं पण प्रकाशन करी वांचक वर्गना करकमलमां मुके छे. ते महान् आनन्दनो विषय छे.

आ ग्रन्थनुं "उपदेश प्रासाद" नाम राखवानुं कारण कथानुयोगनी पृथग्रचनानी उत्पत्ति, अने ग्रन्थकर्ता श्री विजयलक्ष्मी सूरीश्वरजीनो सामान्य परिचय, विगेरे त्रीजा भागनी प्रस्तावनामां में आपेल छे. जेथी पुनरुक्ति दोषना भयथी अहिं फरीथी आपवामां आवतुं नथी.

आ भागमां जिनेश्वरनी पूजा, ज्ञानाचार, दानना प्रकार, छ लेश्या, पांच कारणोथी कार्यसिद्धि, नवनियाणा, क्रोधादि चार कषायो, इत्यादि घणा विषयो सुंदर शैलीथी भरपूर दृष्टान्तो साथे उपदेशात्मक दृष्टिथी कहेवामां आवेल छे के जे वांचकवर्गनुं दिल जरुर आकर्षे तेम छे,

आ भागमां केटलीक मुश्केलीना कारणे वधारे अशुद्धिओ रहेवा पामी छे. तथा अधवचथी काम बंध करी पुस्तक बंधावी बहार पाडवुं पडेल छे. ते बदल वांचकवर्ग अमने क्षमा आपशे. एज अभ्यर्थना.

ली.

धीरजलाल डाह्यालाल महेता

ठे. झवेरीवाड. खडतरनी खडकी अमदावाद.

अर्हम्

ग्रन्थ संबंधी वक्तव्य

श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालय संस्थाए उपदेश प्रासादनो बीजो त्रीजो भाग हिंदी भाषामां छपाया पछी तेने पूर्ण करवाने प्रेस काम चालु ज राखेल परंतु प्रेस विगेरेनुं पराधीन होवाथी त्रण भागना वांचक वर्गनी मागणीओ वारंवार आव्या छतां तेमना वांचन रसनी क्षुधा माटे कांइक विलंब थया छतां चोथो भाग करकमळमां मुकतां आनंद मानीये छीये.

त्रीजा भागमां श्रावक धर्मना गुणव्रतो अने शिक्षाव्रतोथी चौद स्थंभो अने बसो दश व्याख्यानो भरेल छे. जे वर्षना क्रमसर दिवसोमां दीवाळी पर्व सुधीनुं वर्णन समायेलुं छे. अने आ चोथा भागमां बेसता वर्षना महिमा वर्णन करी दीवसोना क्रमे ज्ञानपञ्चमी, मौनएकादशी विगेरे व्याख्यानो साधुना विरहमां पण सुबोध थाय तेवा क्रमे रचना करी छे तथा जिनपूजा प्रतिक्रमण विगेरे श्रावक धर्मना ज्ञानक्रिया मार्गोना परमरहस्य तत्त्वज्ञान साथे आपी परम पुरुषोना चरित्रोना आदर्श कथानको द्वारा पंचाचारनी शुद्धिनुं वर्णन पण भरपुर छे. जेथी आ भाग वाचक वर्गने एटलो उपयोगी छे जे मंद बुद्धि आत्मा पण सुलभ बोधि बने तेम छे.

उपदेशप्रासाद नामने यथार्थ करवा ग्रन्थकार संवेगी परमगीतार्थ होवाथी तात्त्विक दृष्टांत दलीलो जेम राजा महाराजाने महेलनी सामग्री आनंद उपजावे तेवा उपदेश रहस्यो भरी आत्माना सहजानंदी स्वभावनो अनुभव स्वाद आंगला चाटवानी जेम मनन करवा योग्य छे.

आ ग्रन्थने हिंदी भाषामां छपाववा माटे गुप्तदानेश्वरी परम श्रद्धालुपादरीवाला श्रेष्ठिवर्य बाबुलाल तिलोकचंदजीनो आभार यश याद करावे छे जेणे पन्यास मंगलविजयजीनी प्रेरणा थतां गुजराती भाषाना प्रथम भागो वांचतां ज्ञानांमृतनो स्वाद वधी पड्यो अने उपरना भागो मेळववा उत्कंठित थया परंतु भावनगर जैनधर्म प्रसारक सभा तरफथी पांच आवृत्तिओमां छपाया छतां अलभ्य थयो अने धर्महीन आत्माओने पण सुलभ बोधि समजी जैन समाजने वर्तमान भौतिक जमानामां अति उपकारी मानी छपाववा निर्णय कर्यो सर्वदानमां ज्ञानदान मोक्ष हेतु मानी राजस्थानना जैन समाजने हिंदी भाषा परमहितकारी समजी हिंदी अनुवाद करावना पोतानी पुन्य लक्ष्मीनुं दान स्वीकार्युं अने छापवामां वेचाण मददगारोसां अधुरी रकम पुरी करवा दरेक भागमां पूर्ण मदद संस्थाने अर्पण करेल छे एटले पुरेपुरो यश अने धन्यवाद पात्र तेमज अन्य सहायक वर्ग पण अनुमोदन योग्य छे आ पूर्ण ग्रन्थनो अनुवाद जैन साहित्यरसिक सुमित्रसिंहजी लोढा उदेपुरवाला परमार्थ भावे करी आपवा तथा

प्रेसनी व्यवस्था प्रूफशुद्धि विगेरेथी ग्रन्थने आदर्श करवा पंडित धीरजलाल डाह्याभाईनी लागणी तथा शामलानी पोल वाला चिनुभाई मणीलाल फुदी तथा लींबडीवाला शान्तिलाल जगजीवनदास नाणानी अने कागल खरीदी विगेरे कार्येमां परमार्थ प्रेम माटे धन्यवाद जरुरनो छे.

ग्रन्थ शुद्धि पत्रक कर्या छतां दृष्टि दोषके टाइप दोषनी खामीओ माटे वांचक वर्ग सुज्ञभावे सुधारी लेवा नम्र विनंति छे तथा जिनाज्ञा विरुद्ध कांइ पण अशुद्धि थइ होय ते त्रिविध (२) मिथ्या दुष्कृत याचना साथे वांचक वर्ग सुलभ बोधि बने एज शासन देवोने अभ्यर्थना इति शुभम् ।

ॐ अर्हम् नमः

संघवी ताराचंद कस्तुरजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

श्री राजस्थान मरुधर भूमिमां जालोर शास्त्रप्रसिद्ध सुवर्णगिरि प्रदेशमां धर्म कार्योथी उज्वल कीर्ति वालु प्रसिद्ध गाम छे. तेमां वि. सं. १९५१ ना महा सुदि पांचमे ताराओमां चंद्रनी जेम आ पुन्य पुरुषनो जन्म थयो अने राशी मेलथी यथार्थ नाम ताराचंद पाड्यु. पुत्रना लक्षण पारणामां आनंद विनयादि स्वभाव वाला थया.

पांच वर्षनी वय थता मातपिताने पाठशालामां मुकवानो मनोरथ जाग्यो अने शुभ दिवसे धार्मिक व्यवहारिक अभ्यास शरु कर्यो ए जमाना मुजब अगीयार वर्षनी वय थतां हिसाब विगेरे काम चलाउ अभ्यास थतां पुन्योदयनो प्रकास करवा परदेश जवा भावना जागी अने वि. सं. १९६२नी शालमां मुंबई गया वेपारनो अनुभव करवा प्रथम नोकरी शरु करी. बुद्धि कुशलतानु काम करतां थोडा समयमां उंडो अनुभव अने आदर मेलव्यो.

वि. सं. १९६८ नी शालमां थाई सोनी साथे लग्न थया अने स्वाधिन धंधानी भावना जागी धर्मसंस्कार होवाथी अल्पारंभे सारी कमाई वालो सराफी धंधो वि. सं. १९७३ नी शालमां शरु कर्यो. नीति पुन्यदान अने आयरु सर्व संपत्तिनु मूल समजी आवकनो अमुक भाग शुभ क्षेत्रोमां वापरवा निर्णय कर्यो.

वि. सं. १९७५ नी शालमां प्रभातने प्रकाश करनार सूर्यनी जेम कुल दीपक कुंदनमलनो जन्म थयो जन्म महोत्सवना वधामणा साथे सारी सखावतो शरु करी तथा देव गुरु भक्ति, ज्ञानी वैरागी मुनियोनो समागम अने धर्मना मर्म जाणी विवेकथी मंदिर उपाश्रय साधर्मिक सेवा अनुकंपा जेवा क्षेत्रोमां बहुमान अने उदारता साथे गुप्तदान पण प्रसंगे

[illegible]

[illegible]

आ गुरु गुणना ... हजार ... पुराणी ... दर्शन [illegible]
पवित्र पुराणी ... जैन [illegible] आदर्श
आपे ... तीर्थ ... आनन्द ... [illegible]
प्रभावीक ... तीर्थयात्राओमां एक ... कर्यो
त्यांना आनुजी [illegible] आनंद उभ-
रायो अने स्वामि वात्सल्यादि नित्य विधि मुजब दर्शन पूजा विगेरे करी
तीर्थमाला परिधापन विधिमां जणावी थयो. ... हजारनी एक ...
घोलोशी संघवी विगेरेने माला पहेरावनानो महोत्सव उजवायो तेमां संघवी
तारानंदजी तेमना पुत्र कुंदनमलजी तथा हिंमतमलजी तथा पौत्र नथमल
चंद्रकुमारने तथा कुंदनमलजीना धर्म पत्नी संघवण सांकली बाईने तथा
चाली बेनने माला परिधापन कार्य पूर्ण आनंदे उजवी जेसलमेर आखो
दिवस पुराणी हजारो प्रतिमानु दर्शन पूजादिनी यात्रा विधि करी तीर्थ
भंडारमां टीप मांडता रुपीया चार हजारनी योग्य खाताआमां भेट करी
प्रयाण कर्यु पोकरण थई जोधपुर पडाव कर्यो त्यांना स्वागत साथे चैत्य
परिपाटी आदि यात्राविधि करी शासन प्रभावना वाला कार्यो करी फागण
सुदी त्रीजने सोमवारे कापरडा तीर्थे पडाव कर्यो स्वागतादिथी प्रवेश करी
चार मजलानु गगनचुंबी देव विमान सरखु मंदिर जोता यात्रालु वर्गमा
पूर्वना जैनोनी जाहोजलाली धर्म श्रद्धा साथेनो अनुभव थता आनंद
उभरायो यात्रा विधिनो ओच्छव करी संघवीनी हार्दिक भक्ति प्रभावना
दि शासन कार्यो माटे मानपत्र आपवानो निर्णय करी राते संघ एक

थयो संघवीनी सेवा बहुमान उदारतादि गुणोनु वर्णन करी अभिनंदन पत्र अर्पण करता संघवी तरफथी बी संघ पांसे मांगणी थइ जे श्री संघ गाहं घर पावन करवा पधारे मांगणीनो श्री संघे स्वीकार करता जयनाद साथे फुलना हार विगेरे सन्मान विधिये मानपत्र भेट कर्यु आनंदित थयेल यातालु वर्ग साथे संघवीये प्रयाण करी पालीना जिनालयोनु दर्शन पूजन करी सुदी चोथने मंगलवारे पादरली पोच्या गामना संघे सन्मान साथे प्रवेस वाजींत्रोना नाद साथे जयजयनो मानव मेदनीमां आनंदोच्चार थयो जिनालयना दर्शनादि विधि करी श्रीसंघना पावनकारी पगला घरमां करावी स्वामि वात्सल्यादि स्वागत साथे घेर पोचवा सुधीनु खरच संघवी तरफथी याधालु वर्गने अपायु सेवाभावी आदिजीन मंडलने नोकर वर्ग तथा याचक वर्गने उचित सत्कार दान विधिथी हर्षना वधामणा कर्या आवी शासन प्रभावनामां पुन्यानुबंधी पुन्यवंति लक्ष्मीनो व्यय करी पोतानी पाछली वय केवल आत्म शांतिमां जीवन सफल करवा कुल दीपक सुपुत्र कुंदनमलजीने वेपार आदि दुनियानो व्यवहार भलावी धर्म भावना साथे देवगुरुनी भक्तिमां मनुष्य भवने मोक्षनी मोसम मनावे छे. धर्म संस्कारी कुंदनमलजी पण पावनतीर्थ रुप पिताना उपकारने आलेखी आज्ञा पितानी शीरो धार्य करी धार्मिक अने व्यवहारिक कार्यो कुशलताथी करी श्री संघमां पण सेवा सेवक भावे करी आनंद उपजावे छे उपरोक्त संघ यात्रानी सखावतनी जेम बीजी पण घणी सखावतो छे जे अनुमोदन भव्यात्माओने महा पुण्य हेतु जाणी जणाववी जरुर छे तेनी यादि.

विक्रम सं. १९७८ना जेठ वदी छठना मंदिरजीना प्रतिष्ठाना दिवसे नोकारसिनो चडावो लीधो अने पादरली संघने आनंदित कर्यो,

वि. सं. १९८५ना फागण वदी दशमना गोत्रीज भाईने आमंत्रण आपी मंदिरमां अठाइ महोत्सव करी जरमन सीलवरना पालाओनी प्रभावना करी.

वि. सं. १९९८ सिद्धक्षेत्र पालीताणामां कंकुबाइनी धर्मशालाम
कोटडी करावी.

वि. सं. २००४ नीशाल सुधी दश वर्ष पदरलीमां धार्मिक सा
व्यवहारीक पाटशालामां ज्ञानदान दीधु.

वि. सं. १९९४ नीशालमां शत्रुजयना माटे पट मुंबइ करा
पादरली संघने भेट कर्या.

वि. सं. २००० नीशालमां पादरलीमां शांतिस्नात्र साथे अठाइमहो
त्सव अने नवकारशी जमाडी.

वि. सं. २०११ नीशालमां आंबिलखातामां उदार मदद करी.

वि. सं. २००४ नीशालमां .पंन्यास मंगलविजयजीना उपदेश
शीवगंज विद्यालयना निभाव फंडमां मदद करी दीवाल वाच नृत्यमंड
माटे हारमोनीयमनी पेटी भेट करी.

वि सं. २००४ नीशालमां आचार्य श्री महेन्द्र सूरिने पादरली
चोमासु करावी धर्मप्रभावना करी.

वि. स. २००७ नीशालमां सिद्धक्षेत्रमां चोमासु करी अठाइओना
स्वामिवात्सल्यादि कर्या.

वि, सं. २००८ नीशालमां पदरलीनी स्कूलनी टीपमां मदद क

वि. सं. २०१३ नीशालमां फालना बोर्डिंगने मदद करी.

वि. सं. २०१५ नीशालमां पादरलीमां शासन रक्षक माणी
वीरनी देरीमां मकराणानुं काम कराव्युं.

वि. स २०१३ नी शालमां जेसलमेरनो संघयात्रा करावी.

वि. सं. २०१७ नीशालमां उपदेश प्रासादनो चोथो भाग छपाव
वसो नकलनी मदद विद्यालयने आपी धार्मिक टीपो विगेरेमां पण य
मददो करता कोइ वखत गुप्तदानो पण सीदाताने आपता संघवी ताराचंदजं
घणी शासन प्रभावना करी पुन्यानुबंधी पुन्यमां जीवन धन्य कृता
कर्युं छे. इतिशुभ.

हे बीजा संघवीने पोतना पूर्व [illegible] जिनेशो हजारोनी सखावतो करी छे [illegible] भावरतनना उपाश्रमां [illegible] उदार दीलना सारी करी छे [illegible] सिद्धाचल संघ लइ यात्रा [illegible] मुनिवोना चोमासा करावी [illegible] धर्म प्रभावना करी [illegible] राणकपुरनो छ हरि पालता संघ लइ [illegible] जिनेशी शासन प्रभावनाओ करी उजमणा उपधान [illegible] सारी सखावता करी छे

आवी पुन्यानुबंधी सखावतामां [illegible] करी छता पांचेनो मेलाप भवांतरमां भाग्य संबंध [illegible] होय एम [illegible]। [illegible] तथा संघवी नरदीपचंदजी तथा संघवी जगराजजी अमदावाद रहेलाना उपाश्रये पंन्यास मंगलविजयजी पासे संघनुं मुहूर्त लइ मुंबइ धर्म स्नेही वर्गने आमंत्रण आपता संघवी हिमतमलजी जिनेशी मांगणी थइ जे अमारुं अहोभाग्य छे. तेओए अमने सरखा बनावी साथे राखी धर्म प्रेमनी दाक्षिण्यता अने शासननी सारी प्रभावना थवानुं जाणी लोकोत्तर भावनामां सहकार साध्यों जे लोकमां पांचपांडवो रुपे शोभा पात्र बन्या

पांचे संघवीयो भवांतरना भाइनी जेम बंधुभाव धारण करता घणी अनुमोदना गामेगाम संघनुं स्वागतनां मेलवता हता जे संघना नीयम प्रमाणे पांचे संघवीयो एकल आहारी सचित परिहारि ब्रह्मचारी भूसंथारी पादचारी समकितधारी रुप छहरी पेते पालन करी यात्रालुओने मर्यादासर पलावता भावनामां "चालो चालो विमलगिरि जइयेरे, भवजल तरवाने। तमे जयणाए धरजो पायरे, पार उतरवाने"

एम पांचे संघवीयो पेताना संबंधीयोने साथे लइ फालना स्टेशने महा सुदी सातमना भेगा थया अने यात्रालु वर्गने पण एकत्र कर्यो प्रभु पूजा आदि कार्यो करी मोटर सर्वीसमां जीरावला जवा प्रयाण

अति प्राचीन अने प्रभाविक छे आनंदथी यात्रा करी उंघरी थई चारुप तीर्थे स्वागत साथे प्रवेश कर्यो लाखो वर्षोनी पुराणी पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमाजीना दर्शन पूजा आदि यात्रा विधि करी परमार्हत महाराजा कुमारपालना पाटण नगरमां नागरीक संघना स्वागत साथे प्रवेश कर्या पंचासराप्रभु जोगीवाडा जेवा अनेक तीर्थ स्वरुप मंदिरोनी यात्रा माटे वे दिवस पडाव थयो अने सवार सांज शासन ध्वज फरकावता बेन्ड आदि आनंदना नाद साथे चैत्य परिपाटीनो महोत्सव मनायो. प्रयाण थता अडीया हारिज मुजपुर थइने श्री शंखेश्वर तीर्थ धाम पोच्या श्री धरणेन्द्र पद्मावती आदि अनेक देवोथी अधिष्ठित त्रणे लोकमां मोटो महिमा प्रत्यक्ष प्रभावे पावन करनार पार्श्वनाथ प्रभुनी यात्रा माटे त्रे दीवस पडाव थयो सकल संघना स्वामि वात्सल्यो संघवी तरफथी थया सकल संघना समुदाय वच्चे तीर्थ माला परिधापन विधि पंन्यासजीये नंदि क्रियानी विधि पूर्वक करावी राधनपुर वाला जयंतिभाईनो भेटो थयो.

तेओ मधुर कंठे सिद्धाचलनादिना स्तवनो ढालो गवरावता यात्रालु गणमां अमृत वरसावता जाणी साथे लेवानु सिद्ध कर्यु अने हमेशा स्तवनो गवरावता कोइ वखत मुनि सुव्रतविजयजी पण संगीतनो स्वाद करावता अति आनंद उभराता प्रयाण थतां पंचासरा वणाडा पाटडी थईने उपरीयालातीर्थे पडाव थयो पातालथी प्रगट थयेल प्रभु ऋषभदेवनु प्रसिद्धतीर्थनी यात्रा करीने बजाणा पडाव थयो नागरीक संघ साथे नवाबना पाटवी कुंवर अने अमलदार वर्ग स्वागत माटे सामे आवेल संघवीयो साथे नवाबनी मुलाकात थइ अने कार्य सेवाना प्रश्नमां पोताना नवाबसथी सज्ज घोडेस्वार पालीताणा सुधी पोचाडवा हुकम कर्यो जे हंमेश शासन ध्वज फरकावतो आगल चालतो तेम राजस्थान सरकारना शस्त्र सज्ज सुभटो रस्ताना रक्षण साथे सामैयामांनी शोभामां वधारो करता हता प्रयाण थतां पीपली धरसठ मेथाण राजसीतापुर थइ झेझुवामां पंन्यास भद्रंकर-

जयजीनो भेटो थयो हमेशनी विधिमुजब व्याख्यान पंन्यास मंगलवि-
जयजीनु थया पछी तेमने पण आंबिल माटे उपदेश धारावरसावी अने
आठम पण आवेली जेथी सुरेन्द्रनगरना संघे भक्तिरागना पकवानो कर्या
छता मोटा भागे आंबिल कर्या तप जप ध्यानथी कर्म जलावे गिरिवर
दर्शन विरलापावे ।। ए सूत्र सफल कर्युं बीजा दीवस माटे अति आग्रह
छता नीरूपाये वर्धमान पुरी (वढवाण) पोच्यो सुरेन्द्रनगरथी गामेगामना
प्रवेशमां प्रभुने चांदिना रथमा विजराजमान करी वरसी दानने वरसाद
संघवी तरफथी कायम थता जे अन्य दर्शनीयोने पण अनुमोदन रूपे
शासन प्रभावना थती हती चैत्य परिपाटी आदिकार्यो करी सांजना नदी
कीनारे शुल पाणी यक्षना प्रति बोध वाला प्रभावीक स्थाने ध्वजा वेन्डना
जयनाद करता पादुकानी वंदन विधिमां प्रभुना परमार्थ उपगारोना गीत
करी आनंद अनुभवी शीयाणी तीर्थे पडाव थयो जे संप्रति महाराजाना
पुराणातीर्थमां शांतिनाथ प्रभुनी यात्रा करी लींबडी पोच्यो वरसीदान
वरसावता संघना सामैयामां त्रण शिखर बंधी मंदिरोनी यात्रा करी.
शिवगंजवाला संघवी फतेहचंद गोमराजना धर्मपत्नी छ. हरि पालता
होवाथी संघनी भक्ति माटे चूडा साथे आवी उच्चकोटीनु स्वामिवात्सल्य
कर्यु संघवीये पण हमेंशना रीवाज प्रमाणे कीमति शालनी व्याख्यानमं
पहेरामणी करी मीनापुर थई राणपुर प्रवेश थयो त्यांना धर्म धनाढय नरो-
त्तमभाईये यात्रालुओने आश्चर्य करावे तेवी विधिनु स्वामीवात्सल्य उदार
भावे कर्यु अने संघवीयोना समुदायने पोताना मकानमां पधरावी चांदिन
पात्रमां वहमानथी भोजनादि विधि करी अलाउ थई बोटादमां पण भाव
भीनु स्वागत थयु मौन एकादसीना सर्वयात्रालु वर्गे अहोरात पौषध कर्य
दोढसो कल्याणकनु आराधन करवाने दिवस पडाव थयो श्री संघना दर्श
माटे तखतगढना श्राद्धधर्म नथमल पुनमचंद आवेल अने स्वामीवात्सल
यथार्थ करेल लाठीदंड. लाखीयाणी, पछेगाम थइ संघ वलभीपुर पोच्ये
आगम सुत्रोना उध्धार करनार देवर्द्धि गणिक्षमाश्रमण आचार्यश्री मल्लवादी
धनेश्वरसूरीश्वरजी जेवा युगप्रधान पुरुषोना दर्शन करी. उपकार याद कर

तथा घणा वखतना भूख्याने घेवरना भोजननी जेम शत्रुंजयना शिखरो देखाया शासन ध्वज मोहविजयनी जेम फरकवा लाग्या अने कर्मवैरीना विजयनी जेम वाजींत्रो वगाडता शत्रुंजयना दर्शन माटे नगर बहार मेदानमां गया वंदना विधिमां आज मारा नयण सफल थया, वापलडा रे पातकडा तमें शुं करशो रहीने, एवा संगित सुरो जयंतिभाइए गवराव्या. अक्षत साथे सोनारुपा अने सुगंधी फुलो साचा मोतीनो मेलाप करी. तीरथपद पूजाने गाता गिरिराजने वधाव्यो हर्षना अश्रुस्नानथी जीवन पावन कर्युं तीर्थजागरण कर्युं प्रभावना विगेरेमां दिवस सफल करी उमराला सणोसर नोंघणवदर जमणवाव थइ फागण वदी दसमने पालीताणे पोंच्या हमेशां शत्रुंजय शीखरनी दर्शन विधि करता रोमराजी उछलती अने गिरिराज स्पर्शनानी भावना आनंद उमरका करती नागरीक संघ साथे पेढीना मुनीमजी स्वागत सामग्री लइ सामें आव्या तिलकफुलोना हारोनी विधि साथे सौभाग्यवंतीए गहुंलीओ करी अक्षतथी चतुर्विधसंघने वधाव्यो प्रवेशमां ठाम ठाम गहुंलीओ साथे फुलना हारोथी संघवीओने उभरावी दीधा गोडीजी मोटामंदिरजीनी चैत्यपरिपाटी करीने सामैयु खुशाल भुवन धर्मशाले पोच्युं तीर्थमहिमानुं व्याख्यान श्रवण कर्युं तीर्थ तरस्यामां अगी [illegible] प्रभावना प्रकाश थतां सामैयुं राज्ज थयुं यात्रानुगण मोहवैरीना मूल उखेडवा रणडंकानी जेम वाजींत्रो वगाडता तलाटीमां जयनाद करता पोंच्या गिरिराजनी [illegible] तीर्थंकरोनी पादुकाओनी वंदन विधिमां जयंतिभाइए स्तवनो गवराव्यां जीभ अने जीवन पावन थाय तेम कर्युं सोना रुपाना फुल साथे साचा मोति मेलवी अक्षतोनी अंजलीयो भरी थाल भरी भरी मोतिए वधाव्या रोमराजीना हर्ष वधामणा करी. संघवीओ साथे चढवानुं चालु कर्युं. आबाल वृद्ध मुर्धाना वाहन के डोलीने पाप समजी चालता चढतां स्पर्शना धाम आत्मानुं कल्याण समजी जयणा विधिने [illegible] रस्तानी निकट पादुकाओनी वंदन विधि करतां दादाना दरबारमां [illegible] पूर्वक प्रवेश करी समकित [illegible] आनंद पुरे एम शिव

सुंदरीना स्वामीने प्रसन्न करी सिद्ध थवानुं समर्पण कर्युं पांच पांडवोने जेम सिद्ध करवानुं वरदान मांगी लीधुं शांतमुद्राना स्वादमां वंदन विधि करी रायण पादुका पुंडरिक स्वामिजीनी पूजन विधि साथे पांच चैत्य वंदनमां नवनवो आनंद करी यात्रा सफल करी संघनो आठ दिवसनो पडाव थयो तेमां एकेकदीवसना क्रमे कार्यो नवट्ंको घेटी पादुका दोढगाउ छ गाउनी प्रदक्षिणा शेत्रुजी नदीस्नान कदंबगिरिनवर चैत्य परिपाटी शासन ध्वज अने संघ वेन्डवाजीत्रोना जयनाद साथे आराधन विधि करी योग्यस्थाने स्वामिवात्सल्यो कायम थता साधुसाध्वीयोनी उदार भक्तिमां संघवीयो सिद्धाचल सफल करता तीर्थना शणगार रूप अनेक संस्थाओनी मुलाकात लई मान मेलावडा थया अने पांचसो रुपिया जेवी सखावतोथी आंबिलखातु श्राविकाश्रम नीतिसूरीश्वरजी पाठशाला गुरुकुल विगेरेने भेटणा कर्या. विदायगिरिना आगले दिवसे यात्रालु वर्गे संघवीयोनी संघभक्तिनो स्वाद सफल करवा व्याख्यानमां चतुर्विध संघ भेगो थयो पंन्यासमंगलविजयजी विगेरे वक्ताओए जीरावला जेवा दूर दूर देशथी शाश्वता तीर्थनी छ हरीपालन यात्रानो लाभ उदारता तथा बहुमानथी शासन प्रभावना माटे धन्यवादना गुणगान कर्या. अने चांदीनी क्रमथी मानपत्रनी फुलोना हार साथे भेट करी संघवीयोये पण पोतानी लघुताना शब्दोथी क्षमा याचना मांगी लीधी.

चइतर सुदी एकमना विदाय गिरिना दिवसे तीर्थमाला परिधान विधि दादाना दरबारमां रंगमंडपमां पंन्यास मंगलविजयजी गणी आदि चतुर्विध संघ भेगो थइ नंदि क्रीया विधि करावी रुपिया साडात्रण हजारनी बोली पूर्वक शिवसुंदरीना विवाहनी जेम प्रभुने प्रदक्षिणा करी वाजीत्रो नाद साथे संघवीयो अने संघवणोने इन्द्रामाला संबंधी वर्गे पहेरावी जयनाद साथे फुलना हारोनो वरसाद थयो वली विशेषता ए हुती जे पांचे संघवीयोये सजोडे ब्रह्मचर्यव्रत प्रभु साक्षीये सिध्धाचलमां उचरी शिवसुदरीनी वरमालाने सफल करी यात्रा विधिमां आनंद करी

स्थान पर आव्या अने दरेक यात्रालुना दुधथी पाद प्रक्षालन करी तिलक
अने श्रीफल साथे रुपिया अगीयार अने चांदीनी नाळकीयो भेट करी अंतिम
स्वामिवात्सल्यने यथार्थ कर्यु, विशेषतामां परमतपस्वी दलपतभाइ पालीताणा
कायम पौषध व्रत करी निरंतर आंबिल उपवास करता हता तथा
राधनपुरवाला जयंतिभाइनी भक्ति भावना हार्दिक तीर्थ गुणगानने याद
करी कीमतिशालोनी पहेरामणी करी धन्याद आप्यो नोकर वर्गने पण
योग्य बक्षीस आपी याचक वर्गने पण आनंदीत कर्या. साधु साध्वीयोने
वस्त्र कांमल विगेरेथी गुरुभक्ति करी पंन्यासमंगलविजयजी पासे मंगलीक
श्रवण साथे वासक्षेप विधिमां धर्मलाभ आर्शीवाद लीधो एम शासन
प्रभावना द्वारा तीर्थंकर पदनुं पुन्य उपार्जन करी सिध्धाचल तीर्थथी
जयनाद बोलता स्वस्थाने जवानुं प्रयाण कर्यु इतिशुभं भूयात्

अनुक्रमाणिका

शुद्धि पत्रक

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	आमने	सामने
१७	सुव्रताचार्य	सुव्रताचार्य
१८	अतिरित्त	अतिरिक्त
१९	घम	धर्म
२२	मयभ्रान्त	भयभ्रान्त
२	जसे	जैसे
१४	तलाश	तपास
४	सधन	सघन
२३	तिल कराक	तिलक क
८	हये पाने	हाथ पा
१२	धूतमें	द्यूतमें
१	वल्भा	वल्लभा
१	विलंय	विलंब
५	तूं	तूं
९	पारण	पारणा
१८	दमयन्ती	दंपती
८	कहा	कहां
२२	आपत	अर्पित

१८	१७	द्वैागम	द्वैागन
१९	१	ादगे	दिगे
१९	१२	दक्षिणार्ग	दक्षिणार्ध
२०	६	द्वारारो	द्वारगे
२२	११	अनकागा	अनगार
२२	२०	वलि	नाले
२३	१३	उदरपूर्णा	उदरपूर्ति
२६	१९	वद्मावरि	पद्मावति
२७	८	छुढा	छुटा
२७	८	अणुह्लिकाय	अणुह्लि
३१	१	कर्णाधातेन	कर्णाघा
३१	३	भाभार्थः	भावार्थ
३२	६	भा	मी
३३	६	र्वृद्धिर्नया	र्वृद्धिं नेया
३५	१८	संधवी	संघवी
३६	१०	मांयाच्चाधुना	मांयश्च तच्चाधुना
३७	१	संधवी	संघवी
३९	७	निष्कल	निष्फल
४०		पुात्रके	पुत्रिके
४१	९	विनयोद्याम	विनयोद्यम
४४	१७	ापता	पिता
४७	१८	क्षम	क्षमं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१८	धृतं	घृतं
८३	६	श्वशुरस्थ	श्वशुरस्य
८४	२	वहति	वहंति
८५	१	युगलक	युगलिक
८५	२	पूजा	पूजां
८५	४	करजो	करसो
८९	६	पश्चातापो	पश्चात्तापो
८९	२०	उपर्जन	उपार्जन
९४	४	उवमाणेण	उवमाणेणं
९५	२१	निठ्ठअखरडि	निट्ठुअखरडि
९५	१०	तत्ववेदिभि	तत्त्ववेदिभिः
९८	१८	सम्यवत्थनी प्रामि	सम्यक्त्वनी प्राप्ति
९८	१८	जीनेश्वरकी	जिनेश्वरकी
९९	३	सौनेया	सोनेया
९९	२०	भाघनासे	भावनासे
१०१	४	गुरारिव	गुरोरिव
१०२	६	पताका	पिताका
१०३	१	भाजनके	भोजनके
१०५	२०	लाभकी	लोभकी
१०६	८	हथी	हांथी
१०७	११	दुःखपुराए	दुखपुराए

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	भी लिदिके पिछे ऐसा पाठ समजना "इसके लिए मेरी उपमा निर्गुण पुरुषके साथ न घटे, अब सूरिने कहा के " ते मनुष्यरूपेण भवन्ति काकाः" वे मनुष्यरूपसे काक हैं. तब काकने कहा केः—	
४	कृताध्व	कृतार्ध्वं
१	दा	दो
३	भोज	भोज घन'
४	कीर्तिर्यशः	कीर्तिर्यतः
८	कदाप	कदापि
१०	विड्कर्म्मे	किड्कर्म्मे
२२	योंक्	क्यों
५	दीनदीना	दीनादीना
५	विद्याग्रहण	विद्याग्रहण
५	नो	नाे
१	हा	हो
१६	चतुस्त्रिंशद	षट्त्रिंशद
१६	२३४	२३६
११	धरसे	घरसे
२१	हाता	होता
१७	कार्यविचारकः	कार्याविचारकः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४५	२१	भगवान नत	भगवंता
२४७	९	कौर	ओर
२४९	१०	व्युत्प्राहणा	व्युद्ग्राहणा
२४९	११	कुम्मात	कुम्मत
२५०	२०	नतलागा	यतलाया
२५१	१०	पंचत्रिंशद्	सप्तत्रिंशद्
२५१	१०	२३५	२३७
२५२	५	स्याद्वादको	स्याद्वादको
२५२	२०	प्रथानरक्सा	प्रधानरक्खा
२५२	२०	योग नहीं	योगकी हि
२५३	१३	टवड्	ठवइ
२५५	१७	वांप	वांध
२५७	१७	घाटित	घटित
२५९	१५	इसियं	दूसियं
२५९	१८	उसी	उसको
२६०	४	पारसी	पोरसी
२६१	४	भडक	भद्रक
२६८	३	ही	ह्री
२६९	१५	सयभव	शय्यंभव
२७०	१६	संपातिम	संपातित
२७१	७	जधन्यसे	जघन्यसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८३	१८	अव	अव
२८४	५	चल वसेंगे	चले जायेंगे
२८७	२०	आसिष्ट	आकृष्ट
२८७	१७	नामाङ्कित	नामाङ्कित
२८८	१५	मंत्रवलसे	मंत्रावलसे
२८८	२३	द्वाव	साथ
२९०	९	तम्रेतामहि	तत्रैतामहि
२९३	५	मित्रनन्द	मित्रानन्द
२९४	४	तदनिके	तदानेके
२९६	९	पोडशस्तंभस्य	सप्तदशस्तंभस्य
२९७	४	आतिदक्ष	अतिदक्ष
२९७	६	वाहुवलीका	वाहुवलीका
२९७	१८	करेंगे	वैसा करेंगे
२९८	१	छोटे	वडे
२९८	६	संवुस्लाई	संवुइझद
२९८	६	वुस्रदे	वुद्झद
३०१	१	विधा	विद्या
३०३	१	सम्पूण	सम्पूर्ण
३०३	१३	वाहुवलिका	वाहुवलिका
३०३	२०	मुच्छितप्रायः	मुर्च्छितप्रायः
३०४	२४	वचन	कवच

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९३	४	दश	सो
३९४	७	अन्नाण	अन्नाणा
३९४	१३	होना	होता
३९४	१६	निननाणु	निन्नाणु
३९५	१४	कर रह	कर रहा
३९५	१०	व्यादि	व्याधि
३९६	९	गाडते	डालते
३९६	१२	महोत्सव	महोत्सव
३९७	७	मिथ्या	मिथ्या
३९७	१२	अन्त:कारणरुपी	अन्तःकरणरूपी
३९७	१५	स्याग	त्याग
३९८	५	दुर्भे द्य	दुर्भेद्य
३९८	१५	नर्य के	सूर्य के
३९९	४	शून्यधरके	शून्यघरके
४००	९	चलकर	चव कर
४००	१२	श्रष्ठि	श्रेष्ठि
४००	१५	कादश्या	कादश्यां
४००	१६	एकादशयि	एकादशमि
४००	२१	यकयार	एक बार
४०१	५	शोर मल	शोर चकोर
४०२	४	म्यारह	ग्यारह

पृष्ठः	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०३	३	धर	घर
४०३	१०	भा	भी
४०४	४	षोडशस्तंभस्य	सप्तदशस्तंभस्य
४०५	९	अपाढा	आपाढा
४०५	१८	आग्रद	आग्रह
४०६	११	प्ररित	प्रेरित
४०७	६	रक्षेपुः	रक्षेयुः
४०७	१६	ज्ञातीश्च	ज्ञातिश्च
४१०	४	भवात्	भवत्
४१०	५	वाधते	बाधते
४१०	८	अब मु	अब मुजको
४११	१६	युप्मा	युष्मा
४१३	१८	कथानानुसार	कथनानुसार
४१४	५	किरते	फिरसे
४१४	८	किया	किया
४१५	५	पत्ये	पेत्य
४१५	११	चेल्लुह्यति	चेल्लुप्यंति
४१९	४	वहुघा	वहुधा
४१९	१६	मिझ्यात्व	मिथ्यात्व
४२०	११	इनपकार	इस पकार
४२०	१७	जसे	जैसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२१	१६	तंवील	तंवोल
४२२	४	तिअवरणाग	निअवरणाण
४२४	५	अधर्मकी	अधर्म की
४२५	८	कुर्तक	कुतर्क
४२४	२२	अजवमें	अजीवमें
४२९	१८	जागया	जायगा
४३०	१	साधुओं	साधु
४३०	४	गाडकर	डालकर
४३०	१५	नियाणु	नियाणा
४३१	१	हानेपर	होनेपर
४३१	५	वघुको	वधुको
४३१	६	षोड़शस्तंभस्य	सप्तदशस्तंभस्य
४३२	१२	यहा	यहां
४३३	११	शरीदको	शरीरको
४३३	१३	काश्यगोत्री	काश्यपगोत्री
४४०	३	नल्यधीमखली	नल्यधीमंखली
४४०	४	भवोधेषु	भवौघेषु
४४१	१६	राज्यगदी	राज्यगादी
४४२	८	क्रोधमे	क्रोधसे
४४२	१०	भस्मीभूत	भस्मीभूत
४४३	१५	भत्स्य	मत्स्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४५	८	खंदह	खोज
४४७	७	षोडशतमस्य	सप्तदश
४४८	६	तचा	तथा
४४८	१५	सव	सब
४५४	२३	रहिन	रहित
४५७	४	जमा	जैसा
४५८	७	भतिभांति	भ
४५८	२३	सप्तदशस्य भस्य	द
४६४	११	काम	व
४६४	१६	सारिग	स
४६५	१५	नहा	नहीं
४६५	२०	क्षालयध्वयाँ	क्षा
४६५	२०	विर्नागत	वि
४६६	२०	कृतघ्र	कृत
४६७	१३	महांत	मर्हति
४६७	१७	कृतघ्न तथा	कृतघ्नतथ
४६९	१६	सप्तदश	अष्टादश
४७१	१	नहां	नहीं
४७२	१५	चाहिवे	चाहियें
४७३	४	औद	और
४७५	१४	नव	नैव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७३	५	उतराध्यन	उतराध्ययन
४७३	१५	स्थानांगा	स्थानांग
४७५	१६	धरके	घरके
४७६	१८	नवधे	नवमें
४८२	४	आधिका	अधिको
४८२	८	दाहनानारसे	दाख़ानारसे
४८३	१९	पद पद	पद पद
४८४	१९	देस	देख
४८५	८	आनुअंसि	आंनुवोसे
४८८	६	अभिग्रद	अभिग्रह
४८८	१५	गुरुकी	गुरुकी
४८८	२२	फसे	पोसे
४९०	२१	श्री तादमागताः	श्री तादतानागता
४९१	७	जन	जैन
४९१	२३	सप्तदश	अष्टादश
४९२	३	आवश्यं	आवश्यकं
४९३	१५	स्यानांगा	स्थानांग
४९५	१६	धरके	घरके
४९७	१०	साधुओंको	साधुओंको
४९८	११	आसोज	आसो
४७८	१४	अंतरिक्त	अंतरिक्ष

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय १००८ श्री नीतिसूरीश्वरजी म. साहेब

शान्तौ चन्द्रसमः द्युतौ रविसमः क्षान्तौ धरित्रीसमः,
सत्ये धर्मसमः श्रुतौ गुरुसमः धैर्ये हिमाद्रेः समः ।
धर्माचारविचारचारुनिपुणः शाश्वतस्वधर्मे रतः
सोऽयं नीतिसूरीश्वरो गणपतिः पायात्सदापायतः ॥

श्री उपदेश प्रासाद भाषान्तर

भाग ८

स्थंभ १५

व्याख्यान २११

जुहार करनेका स्वरूप

"वर्षके आरंभमें जुहार करने की पध्धति की उत्पत्ति"

अन्योऽन्यं जनजोत्कारा भवंति प्रतिपत्प्रगे।
तत्स्वरूपं तदा पृष्टं पुनर्जगाद साधुपः ॥१॥

भावार्थ :—पड़वा के दिन प्रातःकाल को जो लोग परस्पर जुहार करते हैं उसका स्वरूप राजाके पूछने पर गुरु महाराज ने वतलाया कि :—

हे संप्रति राजा! परस्पर जुहार करने का यह कारण है कि गौतम गणधर को अमावस्या (दीपावली) की रात्रिके अन्तिम भागमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अतः प्रातःकालमें नये राजाके सिंहासनारूढ़ होने के सदृश सब गणधर वहां आकर उनकी वन्दना करने लगे। उसी समयसे प्रणाम करने की यह प्रथा प्रचलित हुई है। इसका दूसरा कारण यह है

कि प्राचीनकालमें अवंती नगरीमें धर्म नामक राजा
करता था । उस के नमुचि नामक प्रधान था । एक
उस नगरमें मुनिसुव्रत स्वामीके शिष्य श्री सुव्रतसूरि प
उनको वंदन करने के लिये भी धर्मराजा अपने प्रधान न
को साथ लेकर गया । देशना के समय उस सचीवने
प्रश्न किया कि "यह सम्पूर्ण विश्व स्वभावत है, जीव के
होने पर सब नाश हो जाता है, जीव परलोकमें किसी
को प्राप्त नहीं करता, अर्थात् जीव तो इस पंचभूत के
का ही नाम है, और परलोक नहीं है ?" इस प्रकार
मत को स्थापन करने वाले सचीव को सूरि के शिष्यने
परास्त कर दिया । इस पर क्रोध के वशीभूत हो रा
समय हाथमें तलवार ले वह सचीव उन मुनि के प्राण
की अभिलाषासे उन के समीप गया । वहां शासन
उसे स्तंभित कर दिया । प्रातःकाल जब राजा आदिने
वही चित्र में आलेखितसा देखा तो राजाने शासनदेवी
गुरु से क्षमा याचना कर उसे मुक्त कराया । पुरवासि
उसे बहुत धिकारा अतः वो लज्जित हो नगरसे
भटकता भटकता हस्तिनापुर नगरमें पहुँचा । उस
पद्मोत्तर नामक राजा राज्य करता था । उसके उत्तम
सुशोभित ज्वालादेवी नामक पट्टरानी तथा विष्णुकुम
महापद्म नामक दो पुत्र थे । राजाने विष्णुकुमारको
पद तथा छोटे पुत्र को युवराज्यपद दिया ।

नमूचि प्रधानने उसकी कलाकुशलता युवराजको दिखाई, जिससे प्रसन्न होकर उसको अपना प्रधान पद दिया, एक बार उस नमूचिने सिंहरथ नामक बडे योद्धाको जीता, जिससे युवराजने प्रसन्न होकर उसे एक वरदान दिया। नमुचिने वह वरदान उसके पास ही धरोहररुपसे रख छोड़ा। एक दिन ज्वालादेवीने हर्षित होकर रथयात्रा करनेकी अभिलाषासे सुवर्ण और रत्नोसे शोभित एक जैनरथ तैयार कराया, उसी समय उसकी शोकने भी इर्षासे प्रेरित हो एक ब्रह्मरथ बनाया जब वे दोनों रथ मार्ग में आमने–सामने मिले तो उन दोनोंके बीच वाद विवाद छिड़ गया। दोनों पक्षोंमे से कोई भी रथ खिचने वाले पुरुष दूसरे रथको मार्ग देकर आगे नहीं बढे। अतः क्लेश निवृतिके लिये राजाने दोनों रथोंको वापस लौटा दिये। इस पर महापद्म इसमें उसकी माताका अपमान हुआ समज उसके मनमें अत्यन्त दुःखी होकर परदेश चला गया। वहां अनुक्रमसे चक्रवर्ती योग्य समृद्धि प्राप्त कर वापस उसकी जन्मभूमिको लौटा उसके पिताने बड़े उत्सवके साथ उसका नगरमें प्रवेश कराया। तत्पश्चात् बत्तीस हजार राजाओंने बारह वर्ष तक महापद्मका राज्याभिषेक किया।

राज्याभिषेकके पश्चात् पद्मोत्तर राजा विष्णुकुमार सहित सुव्रताचार्यके पास दीक्षाग्रहन कर स्वर्ग सिधारा। विष्णुकुमारको छ हजार वर्ष पर्यन्त तीव्र तप करनेसे वैक्रियादिक अनेक लब्धिये प्राप्त हुई।

लिए अभयदान दिया। अनुक्रमसे पुष्कल नामक अपने पुत्र को राज्य भार सौंप नल राजा ने दमयंती सहित शास्त्रानुसार जैन दीक्षा ग्रहण की। नल राजा के शरीर में स्वाभाविक कोमलता होने से संयममें वे जब अतिचार लगाने लगे तो उसके पिता निषध देवता ने आकर उसे फिरसे दृढ़ किया। तत्पश्चात् दमयन्तीके भोगका अभिलाषी होने पर भी मनको तुरत रोक, दीक्षा पालनमें असमर्थ होने से, अनशन अंगीकार कर, मृत्यु प्राप्त कर वह कुबेर नामक उत्तर दिशा का लोकपाल बना। दमयन्ती भी अनशनसे मृत्यु प्राप्त कर उस की प्रिया हुई। फिर कालक्रमसे दमयन्ती द्वारिका नगरीमें कनकवती नामक वसुदेव प्रिया हुई। वहां वो जैन धर्ममें आसक्त हो संसारिक सुख भोगती थी कि श्री नेमिनाथ प्रभुका वहां समोवसरण हुआ कृष्ण परिवार सहित उनको वन्दना करने गया। भगवानने देशना दी। देशनाके अंतमें कृष्णने प्रश्न किया कि; "हे स्वामि! यह नगरी अक्षय है या इसका क्षय होगा?" भगवानने कहा की, "हे कृष्ण! द्वैपायन ऋषिके शापसे इस नगरीका क्षय होगा।" इस प्रकार श्री नेमिनाथके मुंहसे द्वारिकाका दाह होना सुन अनेक यादवकुमार तथा उनकी स्त्रियोंने दीक्षा ग्रहण की। उस समय वसुदेवकी ७१९९८ स्त्रियोंने भी प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की। मात्र देवकी और रोहीणी दो घर पर ही रही। कनकवतीने चारित्र ले उत्कृष्ट भावना रख, शुक्लध्यान धारण कर, केवलज्ञान प्राप्त किया। फिर देवताओं

हाग ऐसे बने साध्वी के वेष धारण कर अनेकों जीवोंको प्रतिबोधित कर, अन्तमें धर्म ध्यान कर मुक्तिको प्राप्त किया।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य २१२ द्वादशाधिकद्विशततम संबंधः]

व्याख्यान २१३

दीप पूजा

लिए अभयदान दिया । अनुक्रमसे पुष्कल नामक अपने पुत्र को राज्य भार सौंप नल राजा ने दमयंती सहित शास्त्रानुसार जैन दीक्षा ग्रहण की। नल राजा के शरीर में स्वाभाविक कोमलता होने से संयममें वे जब अतिचार लगाने लगे तो उसके पिता निषध देवता ने आकर उसे फिरसे दृढ़ किया । तत्पश्चात् दमयन्तीके भोगका अभिलाषी होने पर भी मनको हठात रोक, दीक्षा पालनमें असमर्थ होने से, अनशन अंगीकार कर, मृत्यु प्राप्त कर वह कुबर नामक उत्तर दिशा का लोकपाल बना । दमयन्ती भी अनशनसे मृत्यु प्राप्त कर उस की प्रिया हुई । फिर कालक्रमसे दमयन्ती द्वारिका नगरीमें कनकवती नामक वसुदेव प्रिया हुई । वहां वो जैन धर्ममें आसक्त हो संसारिक सुख भोगती थी कि श्री नेमिनाथ प्रभुका वहां समोवसरण हुआ कृष्ण परिवार सहित उनको वन्दना करने गया । भगवानने देशना दी । देशनाके अंतमें कृष्णने प्रश्न किया कि; "हे स्वामि ! यह नगरी अक्षय है या इसका क्षय होगा ?" भगवानने कहा की, "हे कृष्ण ! द्वैपायत ऋषिके शापसे इस नगरीका क्षय होगा।" इस प्रकार श्री नेमिनाथके मुंहसे द्वारिकाका दाह होना सुन अनेक यादवकुमार तथा उनकी स्त्रियोंने दीक्षा ग्रहण की । उस समय वसुदेवकी ७१९९८ स्त्रियोंने भी प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की । मात्र देवकी और रोहीणी दो घर पर ही रही । कनकवतीने चारित्र ले उत्कृष्ट भावना रख, शुक्लध्यान धारण कर, केवलज्ञान प्राप्त किया । फिर देवताओं

द्वारा दिये गये साध्वी के वेष धारण कर अनेकों जीवोंको प्रतिबोधित कर, अन्तमें कर्म क्षय कर मुक्तिको प्राप्त किया।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य २१२ द्वादशाधिकद्विशततम संबंधः]

व्याख्यान २१३

दीप पूजा

जिनेन्द्रस्य पुरो दीपपूजां कुर्वन् जनो मुदा।
लभते पृथुराज्यादिसंपदं धनदुःस्थवत् ॥१॥

भावार्थ :-"जिनेश्वरकी हर्षसे दीपपूजा करनेवाला मनुष्य निर्धन धनाके सदृश बड़ी राज्यसमृद्धिको प्राप्त करता है।"

दीपपूजा पर धनाका दृष्टांत

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र के दक्षिणार्थ भरतमें मगध नामक देशमें पद्मपुर नगर है। उस नगरका कलाकेली नामक राजा था। उसके पांच लाख अश्व, छ सो मदोन्मत्त हाथी, और अनेकों रथ तथा पत्तिये थी। इस प्रकार पुण्यके प्रभावसे राजाको महान् राज्य लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई थी। ऐसे राज्यसुखको भोगते हुए राजा कलाकेलीसुख पूर्वक दिन निर्गमन करता था।

एक बार पद्मवन नामक चैत्यसे शोभित पद्मवन नामक उधानमें मनुष्योंमें केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी, आदेय नाम कर्मवाले तेवींस वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी अनेक गणधर तथा साधु परिवार सहित' और करोड़ों भुवनपति व्यंतर, ज्योतिषि तथा विमानवासी देवो सहित समवसर्ये। चतुर्विध देवताओंने समवसरणकी रचना की। जब पूर्व द्वारासे समवसरणमें प्रवेश कर भगवान सिंहासन पर बैठे, और बारह पर्षदा भी आकर स्व स्व स्थान पर बैठ गई तब कला केली राजा और अन्य नगरवासीभी भगवान की वन्दना करनेको आये। उस समय अनेकों त्रायस्त्रिंशत् देवताभी आये थे। भगवानने पर्षदाके समक्ष निम्नस्थ देशना दी कि :—

मन्ह जिणाण आणं, मिच्छं परिहरह धरह सम्मत्तं।
छव्विह आवस्सयंमि, उज्जुत्तो होइ पइदिवसं ॥१॥

भावार्थ :–हे भव्य जीवो ! जिनेन्द्रकी आज्ञाका मान्य करो, मिथ्यात्वका त्याग करो, सम्यंकत्व को धारन करो, और अहर्निश छे प्रकारके आवश्यकमें उद्यमवंत बनों। तथा

पव्वेसु पोसहवयं, दाणं सील तवो अ भावो अ।
सज्झाय नमुक्कारो, परोवयारो अ जयणा अ ॥२॥

भावार्थ :–पर्वतिथिमें पौषध व्रत, तथा दान, शील, तप, भावना, स्वाध्याय, नमस्कार, परोपकार, और यतना आदि करना चाहिये।" तथा

जिणपूआ जिणथुणणं, गुरुथुइ साहम्मिआण वच्छल्लं ।
सव्व विरइमणोरह, एमाइं सड्ढकिच्चाइं ॥३॥

भावार्थ :—"जिनपूजा, जिनेश्वर की स्तुति, गुरुकी स्तुति, साधर्मिक वात्सल्य और सर्व विरतीका मनोरथ करना चाहिये क्योंकि ये श्रावकके कर्तव्य हैं ।"

हे भव्य प्राणियों ! मोहनी आदि आठ कर्मके वशसे संसारी जीव जन्म मरणादि अनेक दुःखोंसे व्याप्त चतुर्गति रूप भयंकर संसारकान्तारमें वारंवार परिभ्रमण करता है । यह जीव प्रथम अकाम निर्जराके हुए पुण्यके उदयसे अव्यवहार राशिसे निकल व्यवहार राशिमें आता है फिर यथा प्रवृत्ति करण करके आयुष्य रहित सातों कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति खपाकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग ऊणी एक कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी करता है । उसकी लघुस्थिति जैसे पर्वतसे गिरता पाषाण फूटता पिटता गोल होजाता है उस न्यायसे करता है तथा शुभ भावका बंधन करता है । यथाप्रवृत्ति करणद्वारा ही जीव प्रथम बादर पृथ्वीकाय में पर्याप्त भावसे उत्पन्न होता है । तत्पश्चात् कोई भव्य जीव अनुक्रमसे संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्यपन प्राप्त कर अल्प संसारी हो आर्यक्षेत्रमें उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है । इस प्रकार आर्यक्षेत्र, मनुष्यभव, उच्चकुल, सुगुरुकी जोगवाई आदि धर्मसामग्री प्राप्त कर जीवको आत्माका शुद्ध स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेशसे इस प्रकार आत्मस्वरूपका चिन्तवन करना चाहिये कि "यह मेरा आत्मा असंख्यात प्रदेशवाला है । यह द्रव्या-

र्थिकनयसे एक है, और पर्यायार्थिक नयसे अनेक परिणाम वाला है। ज्ञान, दर्शन, रूप, शुद्धगुण के पर्याय वाला है उस आत्माके अनंता अस्ति धर्म हैं, अनंता नास्ति धर्म हैं; और उसमें अनेकों सामान्य तथा विशेष धर्मोंका भी समावेश है अपितु वे सब पुद्गल भावसे रहित है। वस्तुगत भावसे तीनों कालोंमें अनंति कर्म प्रकृतिसे रहित हैं। साकारोपयोग (ज्ञान) तथा अनाकारोपयोग (दर्शन) के स्वभाववाला है कदाचित चैतन्य भावोंको नहीं छोड़ता है। ये मेरा आत्मा शाश्वत है। शरीर, लेश्या, जोग, कषाय और क्लेश रहित है, अर्थात् अशरीरी, अलेशी, अयोगी, अकषायी, और अक्लेशी है, परमचिदानंद स्वरूपी है, द्रव्यार्थिनयकी मुख्यतासे नित्य है, और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अनित्य है। रत्नत्रयी (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) मय है। श्रद्धा भासन, और रमणताके लक्षनोंवाला है तथा उत्तम निमित्त कारणसे उसका उपादान सुधरता है अतः इस प्रकार से उसके शुद्ध स्वरुप का निरंतर ध्यान करते रहना चाहिये।

ऐसी सदृश अमृत पार्श्वनाथ स्वामीने धर्म देशना दी जिसे सुनकर राजादि सब नगर निवासी हृष्ट तुष्ट हुए, चितमें आनन्दित हुए, प्रीतियुक्त हुए, परम शान्त भावको प्राप्त हुए और हर्षसे उल्लासित हृदय वलि हुए। वर्षाकी धारासे गिरावे कदंव पुष्पों सदृश उनके रोमांच प्रफुलित हो उठे, यावत् अस्थि मज्जा पर्यन्त धर्मके रागसे संगित हो गये। उनमें से कई जीवोंने चारित्र ग्रहण किया, कईने बारह प्रकारका श्रावक धर्मको अंगीकार किया और कईने रात्रि भोजनकी

भवे जीवा विवज्जंति, मुच्चंति य तहेव य ।
सव्वकम्म खवेऊण सिद्धिं गच्छइ नीरगा ॥१॥

भावार्थ :-"जैसे जीव संसारमें बंधते हैं वैसे ही मुक्त भी होते हैं और सर्व कर्मोका क्षय कर आसक्ति रहित पनसे सिद्धिपद प्राप्त करते हैं ।"

इसप्रकार जब धर्मदेशना चल रही थी तब वह धना नामक वणिक भी वहां जा पहुंचा । उस समय भगवानने यह उपदेश दिया कि, "जो भव्यप्राणी जिनेन्द्रकी दीपपूजा करते हैं वे राज्य लक्ष्मीको प्राप्त कर अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति करते हैं ।" ऐसा धर्मोपदेश सुन हर्षित हो धनाने मनमें विचार किया कि, "मैं सदैव जिनेश्वरकी दीपपूजा करूंगा ।" ऐसा अभिग्रह धारण कर श्री नेमिनाथको वन्दना कर धना अपने घर लौट आया । तत्पश्चात् जीव हिंसा न हो उस प्रकारसे अपने तीन रत्नके उद्योतके निमित्त वह सदैव विधि-पूर्वक दीपपूजा करने लगा । ऐसा करनेसे मनुष्यका आयुष्य बांध मृत्यु प्राप्त कर कलाकेली नामक तू राजा हुआ है, और ऐसी राज्य समृद्धिको प्राप्त की है ।"

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथ स्वामीसे अपना पूर्वभव सुन आनन्दित हो राजा कलाकेली प्रतिदिन द्रव्य पूजा तथा भावपूजा विशेषरूपसे करने लगा और सुखपूर्वक रहने लगा । वह राजा अनेक प्रकारके सुख भोग अनुक्रमसे सिद्धिपदको प्राप्त करेगा ।

---

१ शुभ तथा अशुभ ।

"हे भव्य प्राणियों ! अपने अज्ञानके नाश करने के लिए कलाकेली राजा सदृश ज्ञानका विकास करने वाली द्रव्य एवं भावसे विधिपूर्वक दीपपूजामें आदर करो ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य २१३ त्रयोदशाधिकद्विशततमः प्रबंधः]

व्याख्यान २१४

अल्प ज्ञानसे सुख प्राप्ति

ज्ञानं शिक्षयेदल्पं हि, भवेत्तन्न निरर्थकम् ।
स्वल्पाक्षर महिम्नापि, यवेन जीवरक्षित : ॥१॥

भावार्थः— अल्प मात्र ज्ञान भी निरर्थक नहीं होता क्यों कि थोडेसे ज्ञानकी महिमासे भी यव नामक राजर्षिने अपने जीवकी रक्षा की थी ।"

यव ऋषिकी कथा

विशोला नगरीमें यव नामक राजा था । उसके गर्दभिल्ल नामक पुत्र अणुल्लिका नामक पुत्रि और दीर्घपृष्ट नामक प्रधान था । एक दिन रात्रिके पिछले भागमें जग जाते पर राजाने विचार किया कि," मैने पूर्व भवमें कोई ऐसा अद्भूत सुकृत किया होगा कि जिससे उस सुकृतके प्रभावसे आज मैं समुद्र पर्यंत समग्र पृथ्वीको स्वतंत्रता पूर्वक भोग

समयमें लोकान्त तक जाता हैं । पंचेन्द्रिय विना इतनी शक्ति किसीकी हो सकती है ?" ऐसा अपने मनमें निश्चय कर सिद्धान्तादिककी अपेक्षा विना ही स्वमति कल्पनासे उसने उत्तर दिया कि, "हे भद्र ! पुद्गलके पांच इन्द्रिय होती हैं।" ऐसा उत्तर सुन उसने यह विचार कीया कि, "जब इसे अपने शास्त्रका भी ज्ञान नहीं है तो फिर अन्य शास्त्रका ज्ञान तो कैसे हो सकता है ?" उसने परवादियोंसे जाकर यह सर्व हाल कह सुनाया जिससे उन्होंने नवीन आचार्यके ज्ञान का प्रमाण जान कर राजसभामें उसका पराभव किया । जिसके फलस्वरुप जैनधर्मकी बड़ी हानि हुई और कइ लोग धर्म भ्रष्ट हो गये । इससे संघने उन आचार्यको वहांसे दूर देशमें भेज दिया । इस प्रकार कल्पवृत्तिमें दृष्टान्त कहा गया है ।

ऐसे गुरु चारित्र ग्रहण करने पर भी और उपदेश देनेमें तत्पर होने पर भी शास्त्र सम्बन्धि ऐसा ज्ञान न होनेसे उत्सूत्रप्ररुपणा भी करते हैं और अपने आश्रितोंको उलटे भव समुद्रमें डूबाते हैं । इसलिए ऐसे "अबहु श्रुत" को उत्सूत्र बोल जानेके भयसे धर्मका उपदेश देना भी योग्य नही है ।

"इसप्रकार अनेक दृष्टान्तोंसे जानकर संसाररुपी शत्रु के विजयके लिए ज्ञानी गुरुके आश्रयसे हे विवेकी भव्य जीवों ! तुम्हें प्रत्यक्षगुणवाले सिद्धान्तके विचारोंका आश्रय लेना चाहिये ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तंभस्य चतुर्दशोधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२१४॥]

व्याख्यान २१५

ज्ञान—विराधनाका त्याग

जघन्योत्कृष्टभेदाभ्यां, त्याज्या ज्ञानविराधना ।
ज्ञानस्य ज्ञानिनां, भक्तिर्वृद्धिं नेया च धर्मिभिः ॥१॥

भावार्थ :–धर्मिष्ट पुरुषोंको जघन्य तथा उत्कृष्ट भेद द्वारा ज्ञानकी विराधनाका त्याग करना चाहिये, और ज्ञान तथा ज्ञानीकी भक्तिमें वृद्धि करना चाहिये ।"
ज्ञानकी जघन्य विराधना इस प्रकार है :–

पुस्तक, पाटी, ठवणी रुमाल, (पुस्तकबंधन), लेखनि, आदि ज्ञानके उपकर्णोंको चरण आदि कनिष्ट अवयवोंसे स्पर्श करने, मुखके पास वस्त्र रखने विना पढने, पढाने, और पुस्तकको कांखमे रखने, आहार निहार तथा भोग आदिके समय ज्ञानके उच्चार करने आदिसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बंध होता है । पुस्तक या उसके पत्ते अथवा लिखे हुए कागज आदि पासमें हो और लघुशंका आदि की जाय तो उससे भी महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बन्धन होता है इसलिए इसे महा आशातना समजना चाहिये । नवकारवाली, पुस्तक आदि पूज्य उपकरणके साथ मुहपति तथा

चरवलाका स्पर्श नहीं करना चाहिये । मुहपत्ति थूंक आदि से उच्छिष्ट होती है, इसलिये उसको पुस्तकके साथ तथा स्थापनाचार्यके साथ नहीं रखना चाहिये, अलग ही रखना चाहिये । पुस्तक बांधनेका रूमाल भी केवल पृथ्वी पर नहीं रखना चाहिये अन्यथा महान् आशातना होती है और ज्ञानावरणीय कर्मका बंधन होता है । लिखे हुए कागज के टुकडे भी यदि उच्छिष्ट भूमि पर पडे हो तो उनको उठाकर उत्तम उच्चस्थान पर पैरोंसे कुचले न जा सके वहां रखदेना चाहिये । ऐसा करनेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है । इसकी महीमा आधुनिक समयमें भी प्रत्यक्ष देखी गई है । लिखित पत्रोंको किसीभी कारणसे नहीं वेचना चाहिये । लोभवश लिखित पत्र कूंचा कर उसकी कोई वस्तु बनानेके लिए भी नहीं देना चाहिये तथा दिवालीके पर्वमें गंधक सोर आदि भरकर फटाके, फूलजडी, टेटा आदि जो बनाये जाते है उनके उपयोगके लिए भी नहीं देना चाहिये । क्यों कि उनमें सर्व अक्षर जलकर भस्म हो जाते है और ऐसा करनेसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बंध होता है । ज्ञानकी विराधनाके उपरोक्त कारणोंके अतिरिक्त अन्य प्रकार विवेकी पुरुषोंको अपने आप समझ लेना चाहिये ।

अथ ज्ञानकी उत्कृष्ट विराधना बतलाई जाती है :—

श्रीमन् जिनागमका सूत्र, उसका अर्थ तथा दोनोंका वितथकरण-अशुद्ध भाषण मरीचि, जमालि, लक्ष्मणा साध्वी

तथा सावद्याचार्य आदिकी तरह नहीं करना चाहिये । ऐसा करनेसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बन्ध होता है :-

ज्ञान तथा ज्ञानीकी भक्ति इस प्रकार करनी चाहियेः- जिनआगम तथा जिनेश्वरादिके चरित्रवाले पुस्तक आदि न्याय से मिले द्रव्य द्वारा अच्छे कागज पर विशुद्ध अक्षरोंसे लिखवाना तथा गीतार्थ मुनिके पास पढ़ना चाहिये । उनके प्रारंभके प्रसंग उपर बडा उत्सव करना चाहिये । अहर्निश पूजादिक, बडे मान पूर्वक गुरुका व्याख्यान श्रवण करना, कि जिससे अन्य भव्य जीवोंको बोध दायक हो । ज्ञानके पुस्तक पढने वाले तथा पढाने वालेको अन्न, वस्त्र, आदि उपष्टंभ देना चाहिये '

ऐसा कहा जाता है कि-दुषम कालके वशसे जब बाहर वर्षका दुष्काल पड़ा तब सिद्धान्तको उच्छिष्ट प्रायः हुए जानकर उसका नितान्त विच्छेद होगा ऐसा विचार कर नागार्जुन, स्कंदिल आदि आचार्योंने एकत्रित होकर उनके पुस्तक लिखवाये अतः पुस्तके लिखवानी चाहिये और उत्तम वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये ।

श्रीधर्मघोषसूरिके उपदेशसे संथवी पेथड़ने उनके मुंहसे एकादशांगी सुनना आरंभ किया, उसके पांचवे अंगमें जहां जहां "गोयमा (हे गौतम !) ऐसा पद आता था वहां उसने सुवर्ण मोहर से उसकी पूजा की; इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न पर सोनेकी मोहर रखनेसे छत्तीस हजार सोनेकी

मोहरें एकत्रित हो गई। उसने जो द्रव्य खर्च कर समग्र आगमके पुस्तक लिखवा, उनके लिए रेशमी वस्त्रके बंधन बनवाकर उनसे भरूच, सुरगिरी, मांडवगढ़, अर्बुदाचल आदि स्थानोंमें सात ज्ञानके भंडार खोले।

श्री कुमारपाल राजाने सातसो लेखकोंसे छ लाख और छत्तीस हजार आगमकी सात प्रत सुनहरी अक्षरोंसे लिखवाई, और श्रीहेमाचार्य रचित साडे तीन करोड़ श्लोककी इक्कीस प्रत लिखवा कर इक्कीस ज्ञानके भंडार खोले। कहा है कि :—

कालानुभावान्मतिमांद्याच्चाधुना पुस्तकमंतरेण ,
न स्यादतः पुस्तकलेखनं हिश्राद्धस्य युक्तंनितरां विधातुम्॥१॥

भावार्थ :—वर्तमान समयमें कालके अनुभावसे तथा मतिकी मन्दतासे विना पुस्तकके ज्ञान नहीं रह शकता है इसलिए श्रावकोंको निरन्तर पुस्तके लिखाते रहना अत्यन्त योग्य है।"

जिनप्रतिमा करानेसे भी सिद्धान्तोंके लिखाने तथा उनके श्रवण करनेमें वडा पुण्य होता हैं, क्यों कि ज्ञानके अभाव में प्रतिमाका महत्व कैसे जाना जा सकता हैं? इसलिए ज्ञान के भंडार धर्मकी दानशालाके समान शोभा पाते हैं। गुरू विना शिष्यकी तरह पुस्तकों विना विद्वता भी नहीं आ सकती हैं।" आदि उपदेश सुन वस्तुपाल मंत्रीने अढारह करोड़ द्रव्य खर्च कर तीन ज्ञान भण्डार लिखाये।

थरादके संघवी आभु नामक श्रेष्ठोने तीन करोड़ द्रव्य खर्चकर सर्व सूत्रोंकी एक एक प्रत सुनहरी अक्षरों से व अन्य ग्रंथोंकी एक एक प्रत स्याहीसे लिखवाई थी। कहा है कि :—

न ते नरा दुर्गतिमाप्नुवन्ति न मूकतां नैव जडस्वभावम्।
नैवांधतां बुद्धिविहीनतां च ये लेखयन्त्यागमपुस्तकानि ॥१॥

भावार्थ :-"जो मनुष्य सिद्धान्तकी पुस्तकें लिखवाते हैं वे दुर्गति, मूकपन, जड़ता अंधता, और बुद्धिरहितपन का प्राप्त नहीं होते हैं।

अपितु किसी प्रकारसे जिनागमका (श्रुत ज्ञानका) मात्र ज्ञान करनेसे भी अतिशायिपन दिखाई देता है इस विषयमें कहा है कि "श्रुतके उपयोगमें वर्तते छद्मस्थ मुनि द्वारा लाया हुआ आहार कदाचित् अशुद्ध होतो भी केवली उपयोग करते हैं, क्योंकि एसा न करनेसे श्रुतका अप्रमाणपन होता है।"

अतः सम्यक् प्रकारसे सूत्रार्थका उपयोग पूर्वक निरन्तर सर्व अनुष्ठान करने चाहिये। उपयोग रहित क्रिया द्रव्य क्रियापनको प्राप्त होती हैं।

ज्ञानकी विराधनासे बंधे हुए पापकर्म ज्ञान पंचमी के आराधन करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

कहा है कि :-

उत्सूत्रजल्पाच्छूति शब्दव्यत्ययात् क्रोधादनाभोग
हठाच्च हास्यतः

वद्धानि यज्ज्ञानविराधनोद्भवात् कर्माणि यांति
श्रुतपंचमीव्रतात् ॥१॥

भावार्थ :-उत्सूत्रकी प्ररूपणासे, सूत्रका अर्थ विपरीत करनेसे, क्रोधसे, अनाभोगसे, हठसे, और हास्यसे ज्ञानकी विराधना द्वारा वंधे कर्म ज्ञान पंचमीके व्रतसे नास हो जाता हैं ।"

इसका तात्पर्य गुणमंजरि और वरदत्तके दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जाता हैं ।

गुणमंजरी और वरदत्तकी कथा

इस भरतक्षेत्रमें पद्मपुर नामक नगर है जिसमें अजीतसेन नामक राजा राज्य करता था । उसके शिलव्रत धारि अति प्रिय यशोमति नामक रानी थी । उसके वरदत्त नामक एक पुत्र हुआ । उसने उसे आठ वर्षके होने पर पढनेके लिए एक अध्यापकके पास रक्खा. वहां वह सदैव पढ़ने लगा किन्तु उसको एक भी अक्षर स्मरण न रह सका । उसके युवा होने पर पूर्व कर्मके उदयसे उसे कुष्टकी व्याधीने आदवाया जिससे उसका शरीर क्षीण होने लगा ।

उसी नगरमें सात करोड़ सोनेका मोहरोंका अधिपती सिंहदास नामक श्रेष्ठि रहता था जिसके कर्पूरतिलका नामक पत्नी थी। उनकी पुत्री गुणमंजरी नामक बाल्य वयसे ही रोगी और मूंगी थी। उसके रोगकी निवृत्ति के लिए श्रेष्ठीने अनेकों उपाय किये किन्तु वे सब उसर भूमिमें वृष्टि होने सदृश, खल पुरुषके वचन सदृश और शरद् ऋतुकी मेघगर्जना सदृश निष्फल हो गये। वह सोलह वर्षकी हो गई किसीने उसके साथ लग्न नही किये।

एकबार उस नगरमें चारों ज्ञानके धारक, बारह छत्तुगुण निधि और धैर्यद्वारा मेरू पर्वतका भी तिरस्‍ करने वाले विजयसेन गुरू पधारे। वनपालके मुंहसे उन आना सुन उसको पारितोषिक देकर पुरवासियों सहित र गुरूकी वन्दना करने गया। गुरूकी विधि पूर्वक वन्दना नमन कर उनके पास बैठ ईस प्रकार देशना सुनि कि:

क्षपयेन्नारकः कर्म, बह्वीभिर्वर्षकोटिभिः'
यत्तदुच्छ्वासमात्रेण ज्ञानयुक्तस्त्रिगुप्तिवान् ॥१॥

भावार्थः—"नारकीके जीव जितने कर्मोंको कई करो वर्षोंमें खपाते हैं उतने कर्म [1]त्रिगुप्तिमान् ज्ञानी मात्र श्वासोच्छ्वासमें खपा देता। "अपितु" छट्ठ अट्ठम देशभ द्वादशभक्त आदिका तप करने वाले जीव के आत्म जितनी शुद्धि होती हैं। उससे भी अनेक गनि शु

१ मन वचन और कायाकी गुप्ति।

प्रत्येक दिन भोजन करने वाले एक ज्ञानिको आत्माको होती है वह ज्ञान पांच प्रकारका कहा गया है। जिसमें भी श्रुतज्ञान स्वयं तथा दूसरेके लिए उपकारी होनेसे श्रेष्ठ है। अन्य चार ज्ञान मुंगे है अर्थात् वे अपने निज स्वरूपका वर्णन करनेमें भी असमर्थ हैं जब कि श्रुतज्ञान तो स्वयंको तथा अन्यको प्रकाश करनेमें दिपक सदृश समर्थ है। अपितु श्रुतज्ञान किसीको दिया भी जा सकता है। और किसीसे लिया भी जा सकता है। अन्य चार ज्ञान न किसीको दिये जा सकते है। न किसी अन्यसे लिए जा सकते हैं। तीर्थंकर नाम करम भी धर्मोपदेश द्वारा निर्जराको प्राप्त होता है ईसलिये अध्ययन, श्रवण आदि से निरन्तर श्रुतज्ञानकी आराधनाके लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो अज्ञानी जीव मन, वचन, और कायाके योग से ज्ञानकी आशातना करते हैं वे शरीरसे रोगी, सून्य मनवाले तथा मूंगे आदि होते हैं और अनेक भवों में परिभ्रमण करते हैं। कहा भी हैं कि :—

अज्ञानतिमिरग्रस्ता, विपयामिपलंपटाः।
भ्रमंति शतशो जीवा, नानायोनिपु दुःखिताः ॥१॥

भावार्थ :—अज्ञानरूपी अंधकारसे ग्रस्त और विपयरुपी आमिप (मांस) मे लंपट सेंकड़ो जीव नाना प्रकारकी योनीमें दुखित होकर परिभ्रमण करते हैं.

धर्मदेशना सुनकर सिंहदासने विज्ञप्ति की कि "हे भगवान्! मेरि पुत्रके शरीरमें किस कर्मके कारण ये सब

व्याधियें हुई हैं।" सूरि महाराजने कहा कि, "हे श्रेष्ठि! तेरी पुत्री द्वारा पूर्वभवमें बांधे हुए कर्मोंका हाल सुने।

धातकी खंडमें खेटकपुर नामक नगरमें जिनदेव नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसके सुन्दरी नामक प्राण प्रिया थी। जिसने पांच पुत्र तथा चार पुत्रियोंको जन्म दिया था। श्रेष्ठीने बडे उत्सवके साथ पांचों पुत्रोंको अध्यापकके पास रक्खे परन्तु वे चपलता, आलस्य और अविनय करते हुए वहां रहने लगे। कहा है कि :-

आरोग्यबुद्धिविनयोद्यमशास्त्ररागाः
पंचांतराः पठनसिद्धिकरा नराणाम्।
आचार्यपुस्तकनिवाससहायभिक्षा॥
बाह्याश्च पंच पठनं परिवर्धयन्ति॥१॥

भावार्थ :-"आरोग्य, बुद्धि, विनय, उद्यम और शास्त्र पर प्रीति-ये पांच अभ्यन्तर कारण मनुष्यके अभ्यासकी सिद्धि करने वाले होते हैं और अध्यापक, पुस्तक, निवास, सहाय तथा खाने-पीनेकी सुविधा इन पांच बाह्य कारणोंसे विद्याकी वृद्धि होती है।"

एक बार उन उन्मत्त बालकोंको पंडितने शिक्षा दी और "कंबाग्रे वसति विद्या" अर्थात् लकड़ीके अग्र भागमें विद्या वसती है" ऐसा विचार कर उनको लकड़ीसे पीटा।

से नही होते ।" ऐसा मूर्खता पूर्ण उसकी स्त्रीका उत्तर सुन श्रेष्ठी मौन रहा, क्यों कि कहा है कि:—

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शांतये ।
पयःपानं भुजंगानां, केवलं विषवर्धनम् ॥

भावार्थ :— मूर्खको उपदेश देनातो मात्र उसके क्रोध को भडकाना है शान्त करना नहीं क्योंकी सर्पको दूध पिलाना तो मात्र विष वृद्धिका ही हेतु हैं।"

एक दिन श्रेष्ठीने उसकी स्त्रीसे कहा कि "हे प्रिया ! हमारे पुत्रोंको कोई कन्या नहीं देता क्योंकि ऐसा कहते हैं कि :-

मूर्खनिर्धनदूरस्थ, शूरमोक्षाभिलाषिणाम् ।
त्रिगुणाधिकवर्षाणामेषां कन्या न दीयते ॥१॥

भावार्थ :-"मूर्खको, निर्धनको, दूर देशमें रहनेवालेको, शूरवीरको, मोक्षके अभिलाषीको और कन्यासे तीगुनी आयुसे अधिक वय वाले को कोईभी कन्या नहीं देता हैं । इस लिये हे प्रिया ! तूने व्यर्थ इन पुत्रोंको जन्म दिया है ।" सुन्दरीने कहा "इसमें मेरा कोई दोष नहीं है तुमेरा ही दोष है, क्योकि पुत्र पिता सदृश ही होते हैं और पुत्रिये माताके समान होती हैं ? ये वचन सुन श्रेष्ठि क्रोधित होकर कहने लगा कि, "हे दुर्भागी ! हे पापीनी ! हे शंखनी ! तूं मेरे सामने बोलती है ?" सुन्दरीने कहा कि, "हे मूर्ख ! पापी तो तेरा पिता है कि जिसने

भूतेकी पूछ उसे पकड़ुरि धाले तुझे उत्पन्न किया है।"
ऐसा सुन क्रोधित श्रेष्ठीने उस पर पत्थर प्रहार किया जिससे
उसके मर्मस्थानमें लगनेसे वह तत्काल मृत्युका शिकार हो
गई ! हे शेठ ! वह हि सुन्दरी मरकर तेरे घर पर पुत्रीपन
से अवतरित हुई है । उसके पूर्व भवमें ज्ञानकी विराधना
करनेसे वह इस भवमें महान् कष्ट अनुभव करती है ।"

ऐसे प्रमाणित गुरुके वचन सुननेसे गुणमंजरीको
जातिस्मरण हो आया उससे उसने कहा कि, "हे भगवान्
आपके वचन सत्य हैं ! मैंने पूर्व भवमें स्वेच्छा पूर्वक वर्ताव
कर जो कर्म बांधा है उसका वह फल आज मुझे प्राप्त हुआ
है, वह मात्र विलाप करनेसे या खेद करनेसे नष्ट नहीं हो
सकता। श्रेष्ठीने गुरुसे कहा कि, ' हे भगवान् जिसने व्याधिका
आदान निशान किया हो वो ही उसकी औषधि भी बता
सकता है । आपके सिवा इस अभ्यन्तर कारणको कौन जानने
में समर्थ है ? इसलिये अब आप ही कृपा करके इसके
निवारणका उपाय बतलाइये।" इस पर गुरुने कहा कि,
"हे श्रेष्ठी ! विधि पूर्वक ज्ञान पंचमीका आराधन करनेसे
सर्व प्रकारका सुख प्राप्त हो सकता है । उसकी विधि इस
प्रकार है:—

कार्तिक शुक्ला पंचमीके दिन पिणी अथवा नांदीकी
स्थापनाकर उसके सन्मुख आठ स्तुति द्वारा देववन्दन
करना । फिर ज्ञानपंचमीका तप अंगीकार करना । वह तप

फिर चोथा चैत्यवन्दन कर "मनः पर्यव ज्ञानाराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं" ऐसा बोल शेष सब पूर्वोक्त प्रकारसे कह निचे लिखा काव्य पढेः—

साधूनामप्रमादतो गुणवतां तूर्यं मनःपर्यवं
ज्ञानं तद्द्विविधं त्वनिंद्रियभवं तत्स्वात्मकं देहिनाम्
चेतो द्रव्यविशेषवस्तुविषयं द्वीपे च सार्धद्विके
सकृज्ज्ञानगुणांचितान् व्रतधरान् वंदे सुयोगैं मुदा ॥४॥

भावार्थ :—"अप्रमत्त गुणस्थानमें रहे साधुओंको चोथा मनःपर्यवज्ञान होता है उसके दो भेद हैं, वह इन्द्रियके विषय वाला न होकर आत्मविषयी है। अढीद्वीपमें रहने वाले प्राणियोंके चितद्रव्यमे रही सब वस्तुके विषयको जानते हैं। उस ज्ञानके धारक गुणी मुनियोंकी मैं हर्ष पूर्वक भावसे वन्दना करता हूं।"

फिर पांचवां चैत्यवन्दन कर "केवलज्ञानाराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं" आदि सब पूर्वोक्त प्रकारसे कह निचे लिखा काव्य पढे :—

निर्भेदं विशदं करामलकवज्ज्ञेयं परिच्छेदकं
लोकालोकविभासकं चरमचिन्नान्त्यं व्रजेत्वात्मतः।
निद्रास्वप्नसुजागरातिगदशं तूर्यां दशां संगतं
वंदे कार्तिकपंचमीश्रुतदिने सौभाग्यलक्ष्म्यास्पदम्।

भावार्थ :-" अन्तिम (पांचवां) केवलज्ञान है। वह एक ही प्रकारका है। करामलकके समान निर्मल है। वस्तुओं का परिच्छेद करने वाला है। लोक तथा अलोकको प्रकाशित करने वाला है। ज्ञानी आत्माको किसीभी समय प्राप्त हो जाने पर फिर कदापि विलग नही होता, और जो ज्ञान निद्रा, स्वप्न और जागृत इन तीनों दिशाओंको लांघ कर उजागर दिशाको प्राप्त हो गया है। ऐसे सौभाग्य लक्ष्मीके स्थान रूप केवलज्ञानकी मैं कार्तिक शुक्ला पंचमीके दिन वन्दना करता हूँ।" इस प्रकार पांचों ज्ञानकी आराधनाकी विधि कहि गई है।

इस प्रकार ६५ मास तक आराधना करने पर जब तप पूर्ण हो तब चैत्य तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रके प्रत्येक उपकरण पांच पांच रखकर उद्यापन[1] करना चाहिये। कहा है कि:-

उद्यापनं यत्तपसः समर्थने तच्चैत्यमौलौ कलशाधिरोपणम्।
फलोपरोपोऽक्षतपात्रमस्तके, ताम्बूलदानं कृतभोजनोपरि ॥१॥

भावार्थः- तपके समर्थनके लिये उद्यापन करना उतना ही श्रेयस्कर है जितना कि चैत्यके शिखर पर कलश चढ़ाना अक्षतपात्र पर फल चढाना और भोजन कराकर तांबूल भेंट करना।"

ऐसा गुरुका उपदेश सुन गुणमंजरीने विधि पूर्वक ज्ञान पंचमीका तप अंगीकार किया।

तत्पश्चात् अजीतसेन राजाने सूरिसे प्रश्न किया कि, "हे स्वामी! मेरे पुत्र वरदत्तको किस कारणसे अभ्यास करने पर भी कुछ नहीं आता है?" गुरुने कहा कि उसका पूर्व भव सुनियेः-

इस भरतक्षेत्रमें श्रीपुर नामक नगरमें वसु नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसके वसुसार और वसुदेव नामक दो पुत्र थे, वे एक दिन क्रिड़ा करनेको वनमें गये। जहां गुरुके मुंहसे धर्म देशना सुन, घर आ पिताकी अनुमति ले उन दोनो भाइयोंने चारित्र ग्रहण किया। उनमेंसे छोटा भाई वसुदेव मुनि सिद्धान्त रूपी समुद्रका पारगामी हुआ और अनुक्रमसे उसने आचार्यपद प्राप्त किया। वह सदैव पांचसो साधुओं को उपदेश देता था। एकदिन जब वे आचार्य संथारेमें सोते थे तब किसी मुनिने आगमका अर्थ पूछा। उसके जाने पश्चात् दूसरा मुनि आया, वह भी अर्थ पूछकर चला गया। इस प्रकार एकके बाद दूसरे कई साधु आ आकर अर्थ पूछ पूछ कर चले गये। फिर आचार्यको कुछ निद्रा आई कि उसी समय किसी अन्य साधुने आकर पूछा कि, "हे पूज्य! इसके आगेका वाक्य कह कर उसका अर्थ समजाइये।" उस समय सूरिने मनमें विचार किया कि, "अहो! मेरा बड़ा भाइ तो सुखसे निद्रा निकालता है, स्वेच्छासे भोजन

करता है और स्वेच्छासे बोलता है यदि ऐसा सुख किसीभी प्रकारसे मुजे भी मिल जाये तो बड़ा अच्छा हो। क्यो कि:-

मूर्खत्वं हि सखे ममापि रूचितं तस्मिन् यदष्टौ गुणा,
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना नक्तं दिवाशायकः
कार्याकार्यविचारणेऽन्धिबधिरो मानापमाने समः
प्रायेणामयवर्जितो द्रढवपु र्मूर्खः सुखं जीवति ॥१॥

भावार्थ :-"हे मित्र ! मूर्खपन मुजे भी रुचीकर है क्योंकि उसमें आठ गुण होते हैं :-१ प्रथम तो मूर्खको कोई भी चिन्ता नहीं होती, २ बहुत भोजन करता है, ३ लज्जा रहित होता है, ४ रात्रि, दिन सोनेका काफी समय मिलता है, ५ कर्तव्य और अकर्तव्य के विचार मे अंध और बधिर होता है, ६ मान तथा अपमानमे समान होता है, ७ बहुधा व्याधि रहित होता है और ८ शरीर पुष्ट होता है अतः मूर्ख मनुष्य सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करता है।"

अतः मुजे आजसे ही पढने पढानेका कार्य बन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उस आचार्यने पुण्य रूपी अमृतका घड़ा फोड़ दिया और पापका घड़ा भर बारह दिन तक मौन रहे। फिर वो विना पापकी आलोचना किये ही रौद्रध्यान द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गये। वे तेरे यही इस पुत्र के रूपमें उत्पन्न हुए हैं, और पूर्व संचित कर्मसे

मूर्ख तथा कोढी बने हैं, उन सूरिका बड़ा भाई मरकर मान-स सरोवरमें हंस हुआ है।"

इस प्रकार गुरू महाराज द्वारा बताया हुआ पूर्व भव सुननेसे वरदत्तको जातिस्मरण ज्ञान हो आया, इसलिये उसने कहा कि, "अहो! भगवंतका वचन अक्षरे अक्षर सत्य है, अहो! कैसा ज्ञान ?" फिर राजाने कहाकि, हे भगवान्! मेरे इस पुत्रका रोग कैसे जायेगा ?" गुरूने कहा कि, "पूर्वोक्तानुसार यथाशक्ति पंचमी तप करनेसे सब कुछ ठिक हो जायगा!" फिर कुमारने भी गुणमंजरी सदृश विधि पूर्वक तप अंगीकार किया जिसकी आराधना से उन दोनोंकी सर्व व्याधियोंका अन्त हो गया।

वरदत्त कुमारने स्वयंवरसे एक हजार कन्याओंके साथ विवाह किया और अन्तमें राज्य सुख भोग अपने पुत्रको राज्य सौंप दीक्षा ग्रहण की।

गुणमंजरीको भी उत्तम सौन्दर्य प्राप्त हो जानेसे उसका पाणिग्रहण भी जिनचन्द्र नामक एक श्रेष्ठी पुत्रके साथ हो गया। उन्होने बहुत काल तक संसार सुख भोग विधि पूर्वक तपका उद्यापन कर दीक्षा ग्रहण की। अनुक्रमसे वरदत्त और गुणमंजरी दोनों काल कर वैजयन्त नामक अनुत्तर विमानमें उत्तम देवता हुए।

आयुष्यके क्षय होनेपर वैजयंत विमानसे चव कर वरदत्तका जीव जंबूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरीमें

अमरसेन राजाकी भार्या गुणवतीकी कुक्षिमें सूरसेन नामक पुत्रपनसे उत्पन्न हुआ । युवावस्था आनेपर उसने सो राजकन्याओंके साथ विवाह किया । उसके पिता उसे राज्य सौंप परलोक सिधार गये । एकवार उस नगरीके समीपवृत्ति उद्यानमें श्री सीमंधर स्वामी समवसर्ये । यह सुन सूरसेन राजा उनके पास गया, और विधि पूर्वक भगवानको वन्दना कर देशना सुनि । देशनामें भगवानने फरमाया कि, "हे भव्य प्राणियों ! सौभाग्य पंचमी अर्थात् ज्ञान पंचमीका तप वरदत्त सदृश करना चाहिये ।" यह सुन सूरसेन राजाने पूछा कि "हे भगवन ! आपने जिसकी प्रशंसा की वो वरदत्त कौन था ? तब भगवानने उसका सब वृतान्त कह सुनाया जिसे सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने उस भवमें भी अनेकों पुरवासियों सहित ज्ञान पंचमीका व्रत अंगीकार किया । दस हजार वर्ष पर्यन्त राज्यका प्रतिपालन कर अपने पुत्रको राज्य सौंप उसने सीमंधर स्वामीसे चारित्र ग्रहण किया । वे राजर्षि एक हजार वर्ष तक विधि पूर्वक चारित्र पाल केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गये ।

गुणमंजरीका जीव वैजयन्त विमानसे चव कर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्रमें रमणी नामक विजयमें अमरसिंह राजाकी रानी अमरावतीकी कुक्षिसे पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ । प्रसव होने पर [illegible] सुग्रीव रक्खा । उसके बीस वर्षके होने पर उसके पिताने उसे राज्य सौंप दीक्षा ग्रहण की ।

सुग्रीव राजाने अनेक राजकन्याओके साथ पाणि ग्रहण किया। उसके चोरासी हजार पुत्र हुए। फिर उसने पुत्रको राज्य दे दीक्षा ग्रहण की। यथाविधि चारित्र पालन करने व तप करनेसे उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देशना में सर्वत्र अपना चरित्र सुनाने लगा। ईस प्रकार वे राजर्षि एक लाख पूर्वतक चारित्रका सेवन कर अन्तमें परम ज्ञान मय, चिद्रूप, चिदानंद और चित घन ऐसे मोक्षको प्राप्त हुए।

"जिस ज्ञानपंचमीके आराधन करनेसे वरदत्त तथा गुणमंजरीको दोनो प्रकारकी सौभाग्य लक्ष्मी प्राप्त हुइ उस ज्ञानपंचमी जैसा अन्य कोई भी दिन ज्ञानकी वृद्धिके लिए श्रेष्ठ नहीं है ईसलिए आत्माके हितके इच्छुक पुरुषोंको विधि पूर्वक ज्ञानपंचमीकी आराधना करनी चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तं भस्य पंचदशाधिकद्विशततमः प्रबंधः]

व्याख्यान २१६

अभयदान

अभयं सर्वसत्वेभ्यो यो ददाति दयापरः
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन

भावार्थ :-"जो दयालु मनुष्य सर्व प्राणियोंको अभयदान देते हैं वे मनुष्य देहसे मुक्त हो जाते हैं अर्थात् मृत्यु हो जाने पर भी उन्हे किसीका भय नहीं रहता।"

अभयदान पर दृष्टान्त

जयपुर नगरमें धना नामक एक माली रहता था। उसने बेईन्द्री पांच पूरोंका दयासे रक्षण किया। वह माली मर कर कुलपुत्र हुआ। बाल्यकालमें ही उसके माता पिता मर गये, ईसलिये वो परदेशके लिये रवाना हुआ। मार्गमें रात्रिका समय हो जानेसे उसने किसी अरण्यमें एक वट वृक्षके नीचे रात्रि विश्राम लिया। उस वृक्ष पर पांच यक्ष रहते थे। उन्होंने उसे देखा तो ज्ञान द्वारा यह जान करकि, "यह हमारा पूर्व भवका उपकारी है" उससे कहा कि, "तुजे आजसे पांचवें दिन राज्य मिलेगा" यह सुन वह कुलपुत्र बहुत खुश हुआ। प्रातः काल वहांसे चल कर वह पांचवें दिन वाराणसी नगरीमें जा पहुंचा। वहांका नरपाल नायक राजा पुत्र रहित मर गया था। उसका राज्य उसे मिला। उसने राज्यका भार प्रधान पर आरोपण कर वह सुखमें मग्न रहने लगा। एक वार सीमाधृति राजा उसके राज्यका उच्छेद करनेको चढ़ आये। उस समय उसके प्रधानने आ उसे द्यूत क्रीड़ा करनेसे रोक यह वृतान्त कहा और धूतक्रीडा छोड़ लडाइ करनेको आनेके लिये निवेदन किया परन्तु उसने उसकी वात पर जब कोई ध्यान नहीं दिया तो उसकी स्रीने भी खेलमें पासा डालनेसे रोका इस पर उसने कहा कि :–

स वटः पञ्च ते यक्षा ददन्ति च हरन्ति च
अक्षान् पातय कल्याणि यद्भाव्यं तद् भविष्यति

अब चौथा उचित दान बतलाया जाता है—योग्य अवसर पर इस अतिथि (मेहमान) को, देवगुरुके आगमनकी तथा नये बनाये मन्दिर और जिनकी बधाई देने वालेको, काव्य श्लोक, किसी सुभाषित या विनोदपूर्ण कथा आदिके कहने वालेको प्रसन्न होकर दान देना उचितदान कहलाता है। जैसे चक्रवर्ती निरंतर प्रभातकालमें विहार करते तीर्थंकरकी स्थितिकी सूचना देनेवालेको वधामण देते हैं। कहा है कि— बारह कोटि सुवर्ण अथवा बारह लाख द्रव्य अथवा छ लाख द्रव्य चक्रवर्ती एक समयमें प्रीति दानमें देते हैं। वर्तमान-कालमें भी श्री सिद्धाचल पर प्रासादकी समाप्त पर वधामणी देने वालेको वागभट्ट मंत्रीने सुवर्णकी बत्तीस जीमें दी थी। एकवार जुनागढ़के खेंगार राजा शिकार खेलने गये। उन्होंने अनेकों शशलाओंका शिकार किया। जब वह उनको अपने घोड़ेकी पूछके बांध कर वापस लौट रहा था तो मार्गमें वह पथ तथा साथियोंसे विलग पड़ गया अर्थात् अकेला भूला पड़ गया। उसने उस समय एक बेवुलके वृक्षकी शाखा पर चढ़कर बैठे हुए ढुढण नामक चारणका देखकर उससे पूछा कि,—"अरे तू मार्ग जानता है?" तो उस दयालु चारणने कहा कि :—

जीव वध्धंता नरगगइ, अवध्धंता गइ सग्ग।
हुं जाणुं दो वाटडी, जिण भावे तिण लग्ग ॥१॥

अर्थ :—"जीवका वध करने वाला नरकगामी होता है! और दयापालन करने वाले स्वर्गारोही होता हैं मैं तो ये

दो मार्ग ही जानता हूँ, सो तूं जिस मार्गको अच्छा समझे उसीमें गमन कर ।"

इसप्रकार हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाली दूध जैसी उसकी वाणीके सुननेसे राजाको तत्काल विवेक उत्पन्न हो गया और उसने वहां ही जीवन पर्यंत प्राणीवध नहि करनेका नियम ग्रहण कर लिया तथा उस चारणको अश्व और ग्राम आदि देकर उसका गुप्त सदृश सत्कार किया, विक्रम राजाने जब सिद्धसेन गुरुको हार्दिक प्रणाम किया तो उन्होंने उसे धर्मलाभ दिया। राजाने पूछा कि-"हे पूज्य गुरु! इस धर्मलाभसे क्या होता है?" इस पर गुरुने कहा कि:—

दुर्वारा वारणेन्द्रा जितपवनजवा वाजिनः स्यंदनौघा
लीलावत्यो युवत्यः प्रचलितचमरैर्भूपिता राज्यलक्ष्मीः

उच्चैः श्वेतातपत्रं चतुरुदधितटीसंकटा मेदिनीयं
प्राप्यन्ते यत्प्रभावात्त्रिभुवनविजयी सोऽस्तु ते धर्मलाभः ॥१॥

भावार्थ:—"जिसके प्रभावसे मदोन्मत्त हाथी, पवनके वेगको जीतने वाले घोडें, रथके समूह, विलासवाली स्त्रियें, चलायमान श्वेत चामरोंसे शोभित राज्यलक्ष्मी, बड़ा श्वेतछत्र और चार समुद्र पर्यंतकी समग्र पृथ्वी प्राप्त होती है वो त्रिभुवनको जितने वाला धर्मलाभ रूप आशीर्वाद तुम्हें दिया गया है।"

व्याख्यान २१७

दान धर्मकी देशना

श्राद्धानां पात्रभक्तानां, कार्पण्यदोषमुक्तये ।
देशना दानधर्मस्य, देया तीर्थहितेच्छुभिः ॥१॥

भावार्थ :-"सुपात्रकी भक्ति करने वाले श्रावकोंके कृपणतारूपी दोषका निवारण करनेके लिए तीर्थके हितेच्छु साधुओंको दान धर्मकी देशना देना चाहिये ।"

दान धर्मकी देशना इसप्रकार है :—

कालेऽल्पमपि पात्राय, दत्तं भूयो भवेद्यथा ।
जिनाय चंदनादत्ताः कुल्मापाः कल्मपच्छिदे ॥२॥

भावार्थ :-"योग्य समये सुपात्रको अल्प मात्र दिया हुआ दान भी महान् फलका देनेवाला होता है । जैसे चंदन बालाने वीर भगवानको मात्र उड़दके बाकले दिये थे किन्तु वे भी उसके पापके नाश करने वाले हो गये ।"

जब वीर भगवानका किया हुआ अभिग्रह छ महिने बाद पूर्ण हुआ तो देवताओंने उस समय साडे बारह करोड़ सुवर्णकी वृष्टि की जिससे धनावह श्रेष्ठीका घर भर गया जिसे देख उसके पड़ोसमें रहने वाली एक बुढ़ियाने विचार

किया कि-"मात्र उडदके वाकले देनेसे जब एक दुर्बल तपस्वी इतनी बड़ी समृद्धि दे सकता है तो मैं किसी पुष्ट अंगवाले मुनिको घी और मिथी सहित परमान्न द्वारा संतोषी बना क्यों न अपार लक्ष्मी ग्रहण करूं ? "इसलिये वह किसी हृष्ट पुष्ट शरीर वाले मुनिवेशधारीको बुला क्षीरका दान देकर बारंबार आकाशकी ओर देखने लगी। उसे ऐसा करते देख उस वेषधारी साधुने उस बुढ़ियाका अभिप्राय जान उससे कहा कि-"हे मुग्धा ! मेरे तप द्वारा और तेरे भाव द्वारा तथा आधाकर्मीक आहारके दानसे तेरे घरमें रत्न की वृष्टितो नहीं होगी किन्तु पत्थरकी वृष्टि अवश्य होगी क्योंकि दान देने व लेनेवालेकी ऐसी शुद्धि नही है। इस प्रकार वाक्य कह उसने उस वुढियाको प्रतिबोध किया।

अपितु जो नामके योग्य गुणवान हो वह ही श्रेष्ट पात्र है, अन्य कदापि नहीं। पात्र परीक्षाके विषयमें युधिष्ठिर और भीमके संवाद में कहा है कि—हस्तीनापुर नगरमें एक बार जब धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) सभामें बैठे थे उस समय द्वार पर खड़े भीमसेनने आकर धर्मराजसे कहा कि :-

मूर्खस्तपस्वी राजेन्द्र, विद्वांश्च वृषलीपतिः।
उभौ तौ तिष्टतो द्वारे, कस्य दानं प्रदीयते ॥१॥

भावार्थः-"हे राजन् ! एक मूर्ख है लेकिन तपस्वी है, और दूसरा विद्वान् है किन्तु वृषलीपति (भ्रष्ट) है।

ईस पलंग मे रत्न खरे पडे है। स्मशान में चांडालने अपन
अधिकार होनेसे वह पलंग मांगा। उन्होंने देनेको मनाकि
ईसलिये उनदोनोंके आपसमे झगडा हो गया अन्त मे उन
सम्बधिओ के कहने से उन्होंनें वह पलंग चंडालको
दिंया। चांडाल उस खाट को वेचने के लिये बाजार में गया
उस समय लब्धलक्ष धनाने कुछ चिन्होसे उस पलांगव
द्रव्य संयुकत जान योग्य मूल्य दे उसे खरीद लिया। ध
जाकर जब उस पलांगको तोडा तो उसमें कई अमूल्य र
निकल पडे जिससे धना वडा धनाढ्य हो गया। यह दे
उसके भाईओ को उस पर वडी इर्षा हुई और वे उस
मार डालने के उपाय तक सोचने लगे। जिसकी सूचना
उन भाईयोकी स्त्रीयोंने जो धनाको पुत्र समान प्रिय मानती थी
वे एकान्त में दी 'सूचना पा धना घरसे अकेला ही निंकल
पडा और भटकता भटकता राजगृह नगरी पहुंच उसकी
वाहर एक उद्यानमें विश्राम लेने कों बैठा। वह उद्यान जो कुछ
समय पूर्व देवयोग से सूक गयाथा धनाको पुण्य प्रभाव द्वारा
वापस तत्काल नवपल्लवित और पुष्पफल युक्त हो गया।
ईस चमत्कारको देख उस उद्यान के रक्षकने उसका वृत्तान्त
उस उद्यानके स्वामी कुसुमपाल श्रेष्ठीसे जाकर कहा। जिसे
सुन कुसुमपालश्रेष्ठी भी विस्मित हो गया वो धनाको बुलाकर
उसने घेर ले गया और उसका उसकी पुत्रीको साथ विवाह कर
दिया। उस समय उस नगरी मे श्रेणीकराजा राज्य करते थे
उन्होने भी हर्षित होकर उनकी पुत्री धनाको भेंटकी।

राजपुत्रीकी सखी सुभद्रा नामक शालिभद्रकी बहिन थी, उसका भी उसके स्वजनोंने धनाका विवाह दिया। इन दोनों लड़कियोंका लग्न श्रेणिक महाराजाने बड़ी समृद्धि पूर्वक किये। राजाने उनके रहनेके लिये बडे बडे महल दिये जिनमे रह धन्ना पूर्वजन्ममें दिये सुपात्रदानका फल भोगने लगा। श्रेणिक राजाने कई ग्राम भेट भी दिये।

एक समय जब धना उसके महलकी खिड़कीमें बैठा हुआ था, तो उसने उसके कुटुम्बको गरीब दशामे शहरमें फिरते देखा, इससे उन्हे सत्कार पूर्वक उसके घर बुलाया और उन्हें कई गांव देकर प्रसन्न किया। कुछ समय व्यतीत होने पर धनाके तीनो बडे भाइयोंने एक दिन उनके पितासे कहा कि "हे पिता! घरका समग्र द्रव्य आजका आज बांटकर हमारा भाग हमको दो। पिताने कहा कि, "हे मूर्खो! अभीतक तो तुम सब धनाके उपार्जित द्रव्यका ही उपयोग कर रहे हो। इसमें मेरा क्या है कि मै तुम्हें बांट दूं? उस पर उन्होने कहा कि, "जब धना घरसे भगा था, तब चोरकी तरह घरमें से रत्नादि अच्छी अच्छी वस्तुए लेकर गया था इससे अब धनाके पुत्र चाहे राज्य भोगे परंतु हम तो अब बिना हमारा भाग लिये आयन्दा कलसे भोजन तक नहीं करेंगे"। इस प्रकार कुटुम्बमें क्लेश होनेकी संभावना देख धना उसी रात्रिको अकेला घर छोडकर चल दिया।

चलते चलते वह कौशांबी नगरी पहुंचा, जहां मृगावती राणीका पति शतानीक राजा राज्य करता था। धना नगरीके

पिताके स्थान पर राजाने इस ब्राह्मणको रक्खा है। इस समय यह जैसा सम्पत्तिशाली दिखाई देता है, वैसे ही तेरे पिताभी प्रथम थे। इसलिये इसको देखने पर तेरे पिताका स्मरण हो आनेसे खेद वश मैं रोती हूं। तेरे मूर्ख होनेसे तेरे पिता की लक्ष्मी इसे प्राप्त हुई है" कपिलने कहा कि, हे माता! मेरे पिताका स्थान मुझे कैसे मिल सकता है.?" उसने कहा कि, "तूं विद्याअभ्यास कर कि जिससे राजा तुजे तेरे पिताके स्थान पर स्थापन करेंगे।" उसने कहा कि, "हे माता! मैं किसके पास पढुं?" उसने कहा कि' "इस नगरीमे तो सब तेरे द्वेषी हैं, इसलिये तू श्रावस्ती नगरी चला जा। वहां तेरे पिताका मित्र इंद्रदत्त पंडित ब्राह्मण रहता है वह तुजे समग्र कलाप्रवीण कर देगा।" यह सुन कपिल श्रावस्ती नगरी चला गया। वहां इंद्रदत्तके चरणोंमे नमस्कार कर उससे नम्रतासे विनती की कि– "हे पूज्य काका! मेरी माताने मुझे तुम्हारी पास भेजा है, इसलिये मैं अभ्यास करनेको आया हूं।" यह सुन इंद्रदत्तने उसे पुत्र समान गोदिमे बिठा खुशीके समाचार पूछे, फिर उसे भोजन कराकर कहा कि, "मैं तुझे विद्याभ्यास कराउंगा, परन्तु तेरे भोजनका क्या होगा? क्योंकि मेरे घरकी स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं तुझे खिला सकूं" तब कपिलने कहा कि, मैं भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करूंगा, इंद्रदत्तने कहा कि, "हे वत्स! भिक्षा लेनेके लिये भटकनेसे विद्याभ्यास नहीं हो सकता और भोजनके बिना भीं अभ्यास नहीं हो सकता, क्योंकि बिना भोजनके मृदंग भी नहीं बज सकता। इसलिये पहले

भोजनके लिये प्रबंध करना चाहिये। ऐसा कह उस बालक को साथ ले इंद्रदत्त शालिभद्र शेठके घर पर गया। उसके घरके पास खडा हो उच्च स्वरसे गायत्री मंत्रका उच्चारण कर यह घोषित किया कि यहां कोई ब्राह्मण है। शालिभद्र शेठने उसे बुलाकर पूछा कि, "हे ब्राह्मण! तुजको क्या चाहिये? जो इच्छा हो वो मांगो" इंद्रदत्तने कहा कि. "यह ब्राह्मण पुत्र विद्याका अर्थी है। इसे आप सदैव भोजन करावे कि मैं इसे पढा सकूं, मेरे पास धन नही है इसलिये मैं आप से इसके लिए सदैवका भोजन मांगता हूं।" यह सुनकर श्रेष्ठीने उसे सदैव भोजन कराना स्वीकार किया और उसी दिनसे कपिल इंद्रदत्तके पास पढने लगा, और शालिभद्रके यहां भोजन करने लगा।

शालिभद्र शेठके यहां जब वह जीमने बैठता था, तब एक दासी उसे भोजन परोसने आया करती थी। उसके साथ हास्य विनोद करते करते अनुक्रमसे वह उस दासी पर आसक्त हो गया, और दासी भी उस पर मोहित हो गई और वे दोनो स्त्री पुरूष की तरह क्रिड़ा करने लगे। "अहो! विषयको धिक्कार है! क्योंकि विषयमें आसक्त प्राणीको कृत्यका लेश मात्र भी भान नहीं रहता है, इस प्रकार क्रीड़ा करते उन्हे कुछ दिन व्यतीत हुए। एकवार दासीने कपिलसे कहा कि, "मेरे तो तुमही स्वामी हो परन्तु तुम धन रहित हो इस लिये मैं मेरे निर्वाहके लिए अन्य पुरुषकी सेवा करना चाहती हूं? पतिबुद्धिसे नही।" कपिलने उसकी स्वीकृति प्रदान की।

" अहो ! लोभरूपी सागर दुर्धर है, जिसको पूर्ण करनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है। मैं विद्याध्ययनके लिए यहां आया था, घर छोड़कर परदेशमें दूसरेके घर पर आया। इन्द्रदत्त मुझे धर्मार्थसे ही विद्या पढाता है, और शालिभद्र शेठ भोजन कराता है तिसपर भी मुझ अल्पबुद्धिने यौवनके मदसे दासीके साथ गमन किया। मेरे निर्मल कुलको कलंकित किया इसलिये विषयोंको ही धिक्कार है, कि जिसके लिये मनुष्य ऐसी हंसी एवं दुःखका पात्र बनता है। ऐसा विचार करते करते वह विषयोंसे विरक्त हो गया। उसे जातिस्मरण ज्ञान होनेसे वह स्वयंबुद्ध हो गया। उसने उसके सिरके बालोंको अपने हाथसे ही उखाड़ दिया और देवताओं द्वारा दिये गये रजोहरण, मुख वस्त्रिका आदि मुनिवेशको धारण किया। तत्पश्चात् कपिल मुनि प्रसेनजित राजाके पास गया, राजाने पूछा कि, " यह क्या किया ?" उसने "जहा लाहो तहा लोहो०" यह गाथा सुनाकर अपने विचार प्रगट किये। राजाने कहा कि, "मेरी आज्ञा है। तू सुखपूर्वक संसारिक भोग भोगव और दुष्कर व्रतको छोड़ दे।" कपिल मुनिने कहा कि, "ग्रहण किया हुआ व्रत मैं प्राणान्त होने पर भी नहीं छोड़ सकता। मैं अब निर्ग्रन्थ हो गया हूं, अतः हे राजा ! तुजने लाभ हो।" ऐसा कह कपिल मुनि वहांसे निकल ममता रहित अहंकार रहित और इच्छारहित होकर विहार करने लगे। इस प्रकार व्रतका पालन करते हुए जब कपिल मुनिको छ महिने व्यतीत हो गये तो उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया।

राजगृह नगरीके पास अठारह योजन विस्तारवाली भयंकर अटवी है. जिसमें बलभद्र आदि पांचसो चोर रहते हैं वे बोध योग्य है ऐसा जानकर कपिलमुनि अटवीमें गये। वे चोर उनके पास आये। पल्लिपतिने मुनिसे कहा कि, "क्या आपको नाचना आता है?" लाभ होता जान मुनिने कहा कि, "बिन वाजिंत्रके नृत्य नहीं हो सकता।" चोरोंने कहा कि, "हम हाथसे तालियें बजायेंगे, आप नाचिये।" इसपर कपिलमुनि यत्न पूर्वक नृत्य करने लगे, और चोर चारों ओर घूमघूम कर तालियें बजाने लगे। नाच करते करते मुनि प्राकृत भाषामें यह गाथा बोलने लगे कि:—

अधुवे असासयंमि, संसारम्मि दुक्खपुराए।

किं नाम हुज्जं तं कम्मं, जेणाहं दुग्गइं न गच्छेज्जा ॥१॥

भावार्थ:—"अध्रुव, अशाश्वत, और दुःखसे पूर्ण इस संसारमें ऐसा कौनसा कर्म है, कि जिससे जीव दुर्गतिमें न जावे?"

इसप्रकार कपिलमुनिने पांचसो गाथा कही, जिनके सुननेसे उन पांचसो चोरोंको बोध हो गया। उनको गुरुने चारित्र और देवताओंने मुनिवेष दिया, उसे धारणकर वे महर्षि हो गये। फिर वे सब केवली गुरुके साथ पृथ्वी पर विहार करने लगे। कई वर्ष विहारकर कपिल केवली मोक्ष सिधारे।

होनेसे पुंडरिकने उसे आज्ञा दी, और उसने बड़े उत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण की । पुंडरीक तो मंत्रियोंके आग्रहसे भाव चरित्र ग्रहण कर घरमें ही रहा । कंडरीक ऋषिने ग्यारह अंगोका अध्ययन किया परन्तु सब सूके भोजनसे तथा घोर तप करनेसे उसके शरीरमें अनेकों रोग उत्पन्न हो गये ।

कुछ समय पश्चात् गुरूके साथ विहार करते हुए कंडरीक मुनि अपने गांवमें आये । पुंडरीक राजा उन्हें वन्दना करने गया । सर्व साधुओंको वन्दना किया, परन्तु शरीर कृश होने से वे अपने भाईको न पहचान सके । इसलिये उन्होंने गुरु महाराजसे अपने भाईके समाचार पूछा । गुरुने कंडरीक मुनिकी ओर संकेत कर कहा कि, "ये जो मेरे पास बैठे हुए हैं वे ही तुम्हारे भाई हैं ।" राजाने उनको नमस्कार किया । फिर उनका शरीर रोगग्रस्त जान गुरुकी आज्ञा ले राजा उन्हें शहरमें ले गया, और उसकी वाहनशालामें रख अच्छी से अच्छी राजऔषधियो द्वारा उनको रोग रहित किया । वहां राज्य सम्बंघी स्वादिष्ट भोजन करनेसे वे मुनि रस लोलुपी हो गये, जिससे उनकी वहांसे विहार करनेकी इच्छा न हुई । इस पर राजा उन्हें सदैव कहने लगा कि, "हे पूज्य मुनि ! तुमतो अहर्निश विहार करने वाले हो । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों प्रकारके प्रतिबंधसे रहित हो । अब निरोगी होनेसे आप विहार करनेको उत्सुक होगें । आप निर्ग्रंथिको धन्य है । मैं अधन्य हूं क्योंकि मैं भोगरूपि कीचड़में फंसा हुआ दुःख पाता हूं ।" आदि वचन राजाने

भावार्थः—"सत्संगका महात्म्य देखो कि पारस पथ्थरके योगसे लोहा भी सुवर्ण हो जाता है, और सुवर्णके योगसे काच मणि हो जाता है।"

विकाराय भवत्येव, कुलजोऽपि कुसंगतः।
कुलजातोऽपि दाहाय, शंखो वन्हिनिषेवणात् ॥ २ ॥

भावार्थः—"ऊंचकुलका मनुष्य भी कुसंगसे विकारी होजाता है। देखो! उत्तम जातिका शंख भी यदि अग्निका सेवन करता है, तो वो भी मात्र दाहके लिये ही होता है।"

अतः हे पुत्र! तू विद्वानोंका संग कर, शास्त्राभ्यास कर, काव्यरूपी अमृतरसका पान कर, कलायें शीख, धर्म कर, और अपने कुलका उद्धार कर। इस प्रकार अनेकों शिक्षायें दी परन्तु वह तो कहने लगा कि:—

न शास्त्रेन क्षुधा याति, न च काव्यरसेन तृट्।
एकमेवार्जनीयं तु, द्रविणं निष्फलाः कलाः ॥ १ ॥

भावार्थः—"शास्त्रसे क्षुधाका नाश नहीं होता और काव्यके रससे तृषा नही जाती, इसलिये मात्र धनकाही उपार्जन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, सब कलायें निष्फल हैं।"

पुत्रकी इस युक्तिसे दिवाकर खेदित होकर मौन रहा और अधिक शिक्षा देना बन्द कर दिया। उसकी मृत्युके समय वात्सल्यके लिए पुत्रको बुला कर कहाकि, "हे पुत्र!

यद्यपि तुझे मेरे वाक्यों पर विश्वास नही है, फिर भी इस श्लोकको ग्रहण कर कि जिससे मेरा समाधि मरण हो सके।"

कृतज्ञस्वामिसंसर्गमुत्तमस्त्रीपरिग्रहम्।
कुर्वन्मित्रमलोभं च, नरो नैवावसीदति ॥ १ ॥

भावार्थः—"कृतज्ञ (इज्जत करनेवाले) स्वामीका संग करने वाला, उत्तम कुलकी स्त्रीके साथ विवाह करने वाला, और निर्लोभी पुरुषसे मित्रता करने वाला कभी दुःख नही पाता है।"

उत्तमैः सह सांगत्यं, पंडितैः सह संकथाम्।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं, कुर्वाणो नैव सीदति ॥ २ ॥

भावार्थः—"उत्तम पुरूषोंकी संगति, पंडितोंके साथ वार्तालाप और निर्लोभीसे मित्रता करने वाला मनुष्य कभी भी खेदित नहीं होता।"

इन दोनों श्लोकोंमेसे एक श्लोक पिताके आग्रहसे प्रभाकरने ग्रहण किया। कुछ समय पश्चात् उसका पिता मर गया, फिर उस श्लोककी परीक्षा करनेके लिए प्रभाकर देशांतरमें जाते हुए किसी गांवमें एक सिंह नामक क्षत्रिय रहता था, जो बड़ा कृतघ्नी था, उसके आश्रित होकर रहा। उस सिंहके एक अधम दासी थी, जिसको प्रभाकरने स्त्रीके रुपमें अपने घरमें रक्खा, और लोभनंदी नामक अत्यन्त लोभी और निर्दाक्षिण्य जनोंमे मुख्य वणिकके साथ मित्रता की।

एक बार उस नगरके राजाने सिंहको बुलाया, जिसके साथ प्रभाकर भी राजसभामें गया। "यह राजा विद्वानोंसे प्रीति करनेवाला है" ऐसा जानकर प्रभाकरने कहा कि:-

मुर्खा मुर्खैः समं संगं, गावो गोभिर्मृगा मृगैः।
सुधीभिः सुधियो यांति, समशीले हि मित्रता ॥ १ ॥

भावार्थः—' मूर्ख मूर्खके साथ, गायें गायोंके साथ, मृग मृगके साथ और पंडित पंडितके साथ मित्रता करते हैं अर्थात् समान स्वभाववालेकी ही मित्रता होती है।"

यह सुन राजा संतुष्ट हुआ, और प्रभाकरको कई गांव ग्राम आदि इनाम दिया, जो प्रभाकरने सिंहको दे दिया। इस प्रकार अनेकबार उसने सिंह पर उपकार किया। दासीको भी वस्त्रालंकार आदि पुष्कल द्रव्य दिया और लोभनंदी मित्रको भी समृद्धिशाली बना दिया।

सिंहको एक मोर अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था। उसका मांस खानेका दोहद उसकी दासी, जिसको प्रभाकरने स्त्री बनाकर रक्खा था, उसे गर्भके अनुभावसे हुआ। प्रभाकरने अपने पिताके श्लोककी परीक्षा करनेके लिए उस मोरको किसी अन्यस्थानमें छिपाकर दूसरे मोरके मांससे उसका दोहद पूर्ण किया। भोजनके समय सिंहने हरेकस्थान पर अपने मोरकी खोज की, किन्तु वह कहीं नहीं मिला। इसलिये उसने उद्घोषणाकी कि, "जो मोरकी सूचना देगा उसे

होता? पुत्र कैसे हुआ होता? और यह परिवार भी कहांसे होता?

मंत्रीने कहा किः—"हे प्रभू! आपको कृतघ्नपन दिखाते हैं परन्तु मुझे कुमारकी हत्याको तो दंड देना चाहिये।" इसपर राजाने कहा कि, "तूने मुझे तीन आंवलें दिये थे, उनमेंसे अभी तो मात्र एक ही खतम हुआ है।" यह सुन प्रधानने कहा कि, "हे गुणसागर! जब आप ऐसा कहते हैं, तो मैंने तीनों आंवले भर पाये, आप पुत्र सहित चिरकाल राज्य करें।" ऐसा कह राजपुत्रको ला उसके समक्ष उपस्थित किया। सब अत्यन्त हर्षित हुए। राजाने पूछा कि, "ऐसा क्यों किया?" तो मंत्रीने अपने पिताके उपदेशसे लगाकर आज तककी सब घटनाये कह सुनाई। राजाने वह सब वृतान्त सुन उसकी खुदकी प्रशंसा होना जान लज्जित हुआ और मंत्रीको उसका आधा आशन देकर कहा कि, "हे मित्र! मैंने तीन अमूल्य आंवलेमेसे एक को जो मेरे पुत्रतुल्य माना सो उचित नही किया।" ऐसे कई प्रतिवाक्योंसे उसका सत्कार किया। इसप्रकार प्रभाकर मंत्री उत्तम राजाका आश्रय पाकर बहुत सुखी हुआ और उनके साथ रहकर चिरकाल तक राज्यका प्रतिपालन किया।

"प्रभाकर की तरह सज्जन और दुर्जनकी संगतीका फल प्रत्यक्ष देखकर विवेकी प्राणियोंको सुख और सद्गुण की प्राप्तिके लिए निरन्तर सज्जनोंका ही संग करना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तंभस्य-द्वाविंशत्यधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २२२ ॥

भावार्थ :- 'शौर्यमद, रूपमद, काममद, उच्चकुलमद, धनमद और जातिमद, ये मनुष्यके मदरूपी वृक्ष हैं।

शौर्यमदः स्वभुजदर्शी, रूपमदो दर्पणादिदर्शी च।
काममदःस्त्रीदर्शी, विभवमदस्त्वेष जात्यंधः ॥ ३ ॥

भावार्थ :-"शौर्यके मदवाला अपनी भुजाको ही देखता है, रूपके मदवाला आयना (काच) ही देखा करता है. काम मदवाला स्त्रियोंको ही देखता रहता है, और वैभवका मदवाला तो जन्मान्ध सदृश ही होता है।"

सावधयः सर्वमदा, निजनिजमूलक्षयैर्विनश्यति।
गुरुमद एकः कुटिलो, विजृम्भते निरवधिभोगी ॥४॥

भावार्थ :-"ये सब मद तो अवधिवाले होते हैं अर्थात् ये अपने अपने मूलके क्षय हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सर्प सदृश कुटिल एक गुरूमद तो ऐसा है कि जो बिना अवधिके ही विकसित हो जाता हैं।"

मौनेन सामंतानां, निःस्पददृशि, प्रवृद्धविभवानाम्।
भ्रूभंगमुखविकारे, धनिकानां भ्रूयुगे विटादीनाम् ॥५॥

जिह्वासु दूतविदुषां, रूपवतां दशनकेशवेशेषु।
वैद्यानामोष्टपुरे, ग्रीवायां गुरुनियोगिगणकानाम् ॥६॥

स्कंधतटे सुभटानां, हृदये वणिजां करेषु शिल्पवताम्।
गंडेषु कुंजराणां, स्तनतटेषु तरुणीनाम् ॥७॥

भावार्थ :–" सामन्तोके मौनमें, अधिक वैभववालाके स्थिर [1]दृष्टिमें, धनिकके भ्रकुटीके भंगमें अथवा मुहके विकारमें, विषयी (जार) पुरुषोंके भ्रकुटीमें, उद्धत विद्वानोंके जबानमें, रूपवानके दांत तथा केस रचनामें, वैद्योंके होठ पर, बडे अधिकारी या शूरोंके ग्रीवामें, सुभटोंके स्कंध पर, वणिकके हृदयमें, कारीगरों के हाथमें' हाथियोंके गंडस्थलमें और स्त्रियोंके दृढ स्तनमें मद रहता है।" उन्नत चितवालेको ऐसा मद कदापि नहीं करना चाहिये। क्यों किः—

पातालान्न समुद्धृतो बलिनृपो नीतो न मृत्युः क्षयं ।
नोन्मृष्टं शशलाञ्छनस्य, मलिनं नोन्मूलिता व्याधयः ।
शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारःक्षणं ।
चेतःसत्पुरुषाभिमानगणनां मिथ्या वहँह्लज्जसे ॥८॥

भावार्थः— " हे आत्मा ! तू ने पातालमेंसे बलि राजाका उद्धार नही किया, यमराजाका क्षय नही किया, चंद्रका कलंक दूर नही किया, व्याधियोंको निर्मूल नही कि, तथा पृथ्वीको धारण कर शेष नागका एक क्षण भर भी भार हलका नही किया तो फिर सत्पुरुषपनके अभिमानकी व्यर्थ डींग हांकते तुझे शरमाना चाहिये।"

हर्ष अर्थात् विना कारण ही दूसरोंको दुःख देकर अथवा स्वयं शिकार या द्यूत आदि व्यसनोंको अंगीकार कर मनमें खुश

---

१. वैभव मदवाले ऊंचे नही देखते।

सुन कौमुदिकी भेरीसे उद्घोषणा करा चतुरंग सेना सहित श्रीकृष्ण प्रभुको वन्दना करने गये । सब पुरवासियोंके साथ थावच्चा पुत्र भी वन्दना करने गये । वहां प्रभुकी धर्म देशना सुन बोधित हो थावच्चा पुत्रने घर लौटकर उसकी मातासे कहा कि, "मुझे दीक्षा दिलाओ" माताने संसारसुख का बहुत लोभ दिलाया, परन्तु उसके वचनका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । तब उसकी माता कृष्णके पास गई और भेंट रखकर विनंती की कि, "हे राजन् ! दीक्षा लेनेको इच्छुक मेरे पुत्रको आप कुछ शिक्षा दीजिये, यदि यह मेरा एकाकी दीक्षा ले लेगा तो मैं निराधार किस प्रकार जीवित रहूंगी ? उसको धीरज बंधा, सेना लेकर उसके घर पर गये, और च्चा पुत्रसे कहा कि– "हे वत्स ! तू संसारके विलासों आनन्दसे भोग, हमारी छत्र छायामें तेरा कोई अहित कर सकता ।" इस पर थावच्चा पुत्र हस कर बोला "हे राजन् एक मृत्यु ही मुझे अनन्त बार विडंबना है, यदि आप मेरे इस अहितका निवारण कर सकें तो ूंगा कि आप मेरे सचमुच हितवांछक हैं ।" कृष्णने कि, ऐसा तो परमानन्दकी प्राप्ति होने पर ही संभव है" थावच्चा पुत्रने उत्तर दिया कि इसीलिये मृत्यु द्वारा किये का निवारण करनेके लिये ही मैं श्री नेमिनाथके चरण ंकी सेवा करनेका इच्छुक हूं ।"

इस प्रकारका दृढ विश्वास देखकर कृष्णने हर्षित होकर में उद्घोषणा कर दी कि– "इस थावच्चा पुत्रके साथ

जो कोई दीक्षा ग्रहण करेगा, उसके कुटुम्बका भरण पोषण तथा दीक्षाका उत्सव कृष्ण स्वयं करेंगे ।" ऐसी उद्घोषणा होनेसे एक हजार पुरूष दीक्षा लेनेको तैयार हो गये । उन सबके साथ थावच्चा पुत्रका दीक्षा महोत्सव श्रीकृष्णने किया। हजार पुरुषोंसे वहन हो सके ऐसी शिबिकामें बैठकर हजार दीक्षाभिलाषी पुरूषों सहित थावच्चा पुत्र जिनेश्वरके पास गया । उस समय उसकी माताने प्रभुसे कहा कि, "इस शिष्य रुप भीक्षाको ग्रहण कीजिये, और इसे दोनों प्रकारकी शिक्षा प्रदान कीजिये ।" फिर उसने सजल नेत्रोंसे पुत्रसे कहा कि– "हे पुत्र! इस चारित्र पालनमें किंचित् मात्र भी प्रमाद मत करना ।" तत्पश्चात् थावच्चा पुत्रने हजार पुरुषों सहित प्रभुके पास प्रव्रज्या ग्रहण की । अनुक्रमसे सामायिकसे ले कर चौदह पूर्व तकका अभ्यास कर वे एक हजार शिष्योंके आचार्य हुए । एकवार जिनेश्वरकी आज्ञा लेकर विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य सेलकपुरमें समवसर्ये । उस नगरमें पांचसो मंत्रियोंका स्वामी सेलक राजा राज्य करता था । उसने बड़े उत्सवके साथ आ कर आचार्यके पास धर्मदेशना सूनि और, पांचसो अमात्य सहित श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

सौगंधितनगरमें सुदर्शन नामक एक श्रेष्ठी रहता था । एकवार चारों वेदोंका ज्ञाता, तथा शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, तथा देवके ध्यान आदि नियमवाला, और गेरूए रंगके वस्त्रको धारण करने वाला शुक नामक परिव्राजक एक हजार

शिष्यों (तापसियों) सहित वहां आया। उसका शौच मूलक शौचमय धर्म सुन कर सुदर्शनने उसे ग्रहण किया। एकबार विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य उस नगरमें आया। उनका आना सुन सुदर्शनने उनकी परीक्षा लेनेके लिए उनके पास जाकर उनसे पूछा कि, "तुम्हारा शौच मूलक धर्म है या दूसरा?" सूरिने कहा कि, "हे श्रेष्ठी! हमारा विनय मूलक धर्म है। वह भी साधु और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका है, और उसके अन्य क्षांत्यादि दश प्रकार हैं।" ऐसे शब्दोंसे प्रतिबोध करा सुदर्शनको श्रावक धर्म अंगीकार कराया। वह जीवादि तत्त्वोंका स्वरूप जानकर अस्थिमज्जाए जैनधर्मका अनुयायी हुआ। तदनन्तर उसका पूर्वगुरू शुक परिव्राजक शिष्यों सहित उस नगरमें आया। वहां सुदर्शनको अन्य धर्ममें आशक्त देख उसने कहा कि, "अरेरे! क्या तू पाखंडियोंके चंगुलमें फँस गया?" श्रेष्ठीने कहा कि, "मेरे गुरू चार ज्ञानके धारक थावच्चापुत्र आचार्य यहीं पर हैं उन्होंने मुझे विनयमूल धर्म सिखाया है।" यह सुन शुक परिव्राजक अपने हजार शिष्यों सहित उस श्रेष्ठिके साथ सूरिके पास जा उसने प्रश्न किया कि:—हे भगवन्! क्या तुम्हारे यात्रा, यापनिका, अव्याबाधा और प्रासुक विहार है?

सूरि—हे शुक! यह सब हमारे हैं।

शुक—हे स्वामी! तुम्हारे कौनसी यात्रा हैं?

सूरि—हे शुक! साधुओंको ज्ञानादिक तीन रत्न प्राप्त करने चाहिये। इसे यात्रा कहते हैं।

तत्पश्चात् चौदहपूर्वके ज्ञाता शुक आचार्य विहार करते करते सेलकपुर उद्यानमें आये । सेलकराजा पांचसो मंत्रियो सहित उनको वन्दना करने-गया । गुरुको नमस्कार कर, धर्मोपदेश सुन, वैराग्य प्राप्त कर वापस घर लौटा । वहां अपनी रानीके पास बैठ पांचसो मंत्रियोंको उसने कहा कि, "हे प्रधानो ! में समस्त पापको नाश करने वाली प्रव्रज्या ग्रहण कर रहा हूं । तुम क्या करोगे ?" उन्होंने कहा कि, "हे स्वामी ! हम भी सब संयमसुखके अभिलाषी हैं, इसलिये हम भी आपके साथ व्रत ग्रहण करेंगे ।" तब राजा बोला कि, "यदि ऐसा है तो तुम अपने अपने घर जा अपने अपने पुत्रोको गृहका कार्यभार सौंप हजार पुरुषोंसे वहन हो सके ऐसी शिबिका पर आरूढ़ हो यहां जल्दी चले आओ ।" उनको ऐसा कह राजाने उसके पुत्र मंडुक कुमारका राज्याभिषेक किया । फिर मंडुक राजा द्वारा निष्क्रमणत्व करा राजा पांचसो मंत्रियों सहित शुक आचार्यके पास आ त्रिविध त्रिविध प्रकारसे सर्व सावद्य योगका प्रत्याख्यान किया ।

सेलक मुनिको बारह अंग धारक जान शुक सूरिने उसे सूरिपद पर स्थापित किया । शुकसुरि चिरकाल विहार कर हजार मुनियों सहित शत्रुंजयगिरि पर गये । जहां एक मास का अनशन कर मोक्ष सिधाए ।

श्री सेलकाचार्यका शरीर रूखा,, सूखा, तुच्छ और कालातिक्रान्त[1] भोजन करनेसे खांज, दाह तथा पीत ज्वरकी

१ बहुत सा समय व्यतीत हो जानेसे अत्यन्त ठंढा ।

द्राविड़ वालिखिल्ल कथा।

ऋषभदेवका द्राविड़ नामक पुत्र था। उसके द्राविड़ और वालिखिल्ल नामक दो पुत्र थे। एकबार द्राविड़को मिथिलाका राज्य और वालिखिल्लको लाख गांव देकर द्राविड़ने प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की। बादमें द्राविड़ने अपने छोटे भाईको अधिक सम्पत्तिवान् देखकर उसकी उन्नति सहन न कर सकनेसे उस पर द्वेष करने लगा। वालिखिल्ल भी यह हाल सुनकर बड़े भाईसे द्वेष करने लगा। इसप्रकार द्वेषी होनेसे एक दूसरेका राज्य छीनलेनेका प्रयत्न करने लगा, और परस्पर अवसर ढूंढने लगे। एकबार जब वारिखिल्ल द्राविड़के नगरमें आता था, तो द्राविड़ने उसे उसके नगरमें आनेसे रोका। जिससे वारिखिल्ल क्रुधित हुआ, और उसने युद्ध करनेको अपनी सेना एकत्रित की। द्राविड़ भी युद्ध करनेको तैयार हो गया। दोनों सामने-सामने आ गये। बीचमें पांच योजन युद्ध भूमि छोड़कर दोनोंने सेनाका पड़ाव डाला। दोनोंकी सेनामें दस-दस लाख हाथी, घोड़े और रथ थे, तथा दस-दस क्रोड़पति थे। निश्चित दिन युद्ध आरंभ हुआ। हाथिवाले हाथि वालोंके साथ, और पत्ति पत्तिके साथ इसप्रकार समान युद्ध होने लगा। इसप्रकार निरन्तर युद्ध करते हुए सात महिने व्यतीत हो गये। जिसमें कुल दस करोड़ सुभट मारे गये। इतनेमे वर्षाऋतुके आ जानेसे युद्ध विराम कर वे लोग घास और पत्तोंकी झोंपडीये बनाकर वहीं रहे।

“ जो संघ सहित श्री सिद्धाचल पर जाकर कार्तिक तथा चैत्र मासकी पूर्णिमाके दिन आदर पूर्वक दान तथा तप आदि करते हैं, वे मोक्ष सुखके भोगने वाले होते हैं।”

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तंभस्य पंचविंशत्यधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २२५ ॥]

श्री उपदेश प्रासाद

स्थंभ १६

व्याख्यान २२६

छ लेश्याका स्वरूप

कीर्तिधरमुनीन्द्रेण, प्रियंकर नृपं प्रति ।
लेश्यास्वरूपमाख्यातं तच्छ्रुत्वासौ शुभां दधौ ॥१॥

भावार्थः—“ कीर्तिधर मुनीन्द्रने प्रियंकर राजाको लेश्याका स्वरूप बतलाया था, जिसे सुन उसने उत्तम शुभ लेश्या धारण की थी।”

प्रियंकर राजाकी कथा

[illegible]

लिये अति उत्सुक हो उसकी सेनाको भी पीछे छोड अकेलाही त्वरित गतिसे नगरमें चला आया। उस समय वह उनके नगरको ध्वज, तोरण आदिसे शोभित देख आश्चर्य चकित हो राजमहलके पास पहुंचा। वहां भी उसने उसकी प्रियाको सर्व अलंकारोंसे विभूषित और सत्कार करने तैयार खड़ी देखा। राजाने उससे पूछा कि, "हे प्रिया मेरे आनेके समाचार तुझे किसने कहे?" उसने कहा कि, "कीर्तिधर मुनिराजने आपके अकेले आने की सूचना दी थी। इसलिये मैं आपका स्वागत करनेको तैयार खड़ी हूं।" फिर अरिंदमन राजाने उन मुनिराजको बुलाकर पूछा कि, "यदि आप ज्ञानी हैं तो मेरे मनका विचार बतलाइये।" इस पर मुनिने कहा कि, "हे राजन्! आपने अपनी मृत्युके विषयमें विचार किया है।" राजाने पूछा कि "हे साधु मेरी मृत्यु कब होगी?" मुनिने कहा कि आजसे सातवें दिन बिजलीके गीरनेसे तेरी मृत्यु होगी, और मर कर अशुचिमें बेइन्द्रिय कीडेके रूपमें उत्पन्न होगा।" ऐसा कह मुनिराज उनके उपाश्रयमें गये। राजा यह वृतान्त सुन आकुल व्याकुल हुआ, और उसके पुत्र प्रियंकरको बुलाकर कहा कि, "हे वत्स! यदि मैं अशुचिमे कीड़ा बनु तो तू मुझे मार डालना" प्रियंकरने उसकी बात स्वीकार की। राजा सातवें दिन पुत्र, स्त्री और राज्यादिककी तीव्र मूर्छासे सहित मरकर अशुचिमें कीडेके रूपमें उत्पन्न हुआ। उस समय प्रियंकर उसे मारनेको उद्यत हुआ परन्तु वह मरनेसे खुश नही हुआ। इसलिये प्रियंकरने मुनिसे

पूछा कि, "हे मुनिराज! क्या यह मेरा पिता है कि जो दुखित होने पर भी मरनेकी इच्छा नहीं करता? तब साधुने कहा कि:—

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये ।
समाना जीविताकांक्षा तुल्यं मृत्युभयं द्वयोः ॥१॥

भावार्थः— विष्ठाके कीडे तथा स्वर्गस्थ इन्द्रको जीवनेकी आकांक्षा एक सदृश ही होती है, और उन दोनोंको मृत्युका भय समान ही होता है।"

इस प्रकार सुन प्रियंकर राजाने गुरुसे कहा कि, "हे स्वामी! किसी समय न देखे, न सुने, और न इच्छा किये हुए परभवमें भी सर्व जीव गमन करते हैं, जैसे कि मेरे पिताने कीडेका भव प्राप्त किया है तो फिर ऐसी गतिमें आत्मा किस हेतुसे जाता है?" गुरुने उत्तर दिया कि, "जीवोंको जैसी लेश्याका परिणाम होता है वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है।" राजाने पूछा कि, "हे स्वामी! लेश्या कितने प्रकारकी है?" तब गुरुने छ लेश्याका स्वरूप बतलाया कि, "हे राजा! आत्माके परिणामविशेषसे लेश्या छ प्रकारकी होती है।"

अतिरौद्रः सदाक्रोधी, मत्सरी धर्मवर्जितः ।
निर्दयो वैरसंयुक्तः कृष्णलेश्याधिको नरः ॥२॥

भावार्थः— [illegible] पुरुष [illegible] हो, सदा क्रोधी हो, [illegible] हो, धर्मसे वर्जित हो, निर्दयी हो, और निरन्तर

वैर रखने वाला हो उसे विशेपरूपसे कृष्ण लेश्या वाला समझना चाहिये ।"

अलसो मंदबुद्धिश्च, स्त्रीलुब्धः परवंचकः ।
कातरश्च सदा मानी, नीललेश्याधिको भवेत् ॥१॥

भावार्थ :—"नील लेश्या वाला जीव, आलसी, मंदबुद्धिवाला, स्त्रीमें लुब्ध, परपीड़ा पहुंचाने वाला, डरपोक और निरन्तर अभीमानी होता है ।"

शोकाकुलः सदा रुष्टः, परनिन्दात्मशंसकः ।
संग्रामे दारुणो दुस्थः, कापोतक उदाहृतः ॥३॥

भावार्थः—"निरन्तर शोकमें मग्न रहनेवाले, सदा क्रोधि, परनिन्दक, आत्म प्रशंसक, रणसंग्राममें भयंकर और खिन्नमन पुरुषकी कापोतलेश्या कही जाती है।"

विद्वान् करुणायुक्तः कार्याकार्य विचारकः ।
लाभालाभे सदा प्रीतः पीतलेश्याधिको नरः ॥४॥

भावार्थः—"विद्वान, करुणावान, कार्याकार्यका विचार करनेवाला, और लाभ अलाभमें सदैव आनन्दित रहनेवाला हो, ऐसे पुरुषको पीतलेश्या अधिक होती है।"

क्षमावान् निरतत्यागी, देवार्चनरतो यमी ।
शुचीभूतः सदानन्दः, पद्मलेश्याधिको भवेत् ॥ ५ ॥

कहा कि—"तुमने जो फल मुझे दिया था, वो आम्रफल, वृक्षसे तोड़कर लाये थे कि पृथ्वी पर पड़ा हुआ उठाकर लाये थे ईस पर उन्होंने सत्य सत्य वात कह सुनाई। जिसे सुन राजाने विचार किया कि:—"अवश्य ही वह फल पृथ्वी पर गिरने वाद सर्प आदिके विषसे मिश्रित हो गया होगा, उसीसे उत्तम ब्राह्मणकी मृत्यु हुई है। परन्तु वह वृक्ष अमृत समान ही था। अरेरे! मैंने बिना विचार किये ही असदृश कैसा कार्य किया, कि जिससे ऐसे उत्तम वृक्षको क्रोधवश उखडवा दिया!" ईसप्रकार अपने गुणोंका वारंवार स्मरण कर उसने जीवन पर्यन्त महान् शोक किया।

इस दृष्टान्तका यह तात्पर्य है कि, "जिस प्रकार इस राजाने विना सोचे समझे यह कार्य किया है, वैसे दूसरोंको कदापि नहीं करना चाहिये।" यहां इसके उपनयकी योजना इस प्रकार करना चाहिये कि:—"अत्यन्त दुर्लभ आम्रवृक्ष सदृश मनुष्य जन्म पाकर अज्ञान तथा अविरति द्वारा जो मूर्ख पुरुष अपना मनुष्य भव व्यर्थ खोदेता है वह वारंवार अत्यन्त शोकको प्राप्त होता है। कदापि देवके सानिध्यसे वैसे वृक्षकी प्राप्तितो फिरसे होना तो संभव है, परन्तु मुग्धपनमे व्यर्थ खोये हुए मनुष्य भवकी प्राप्ति तो फिरसे होना असंभव है। इसलिये किन्चित् मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। हे प्राणी जिस प्रकार पतंगिया, भ्रमर, मृग, पक्षी, सर्प, मच्छि और हाथी आदि इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होनेसे अपने प्रमादसे ही मृत्युको प्राप्त होते है"

व्याख्यान २२८

सहसा कार्य नहीं करनेके विषयमें

सहसा विहितं कर्म, न स्यादायति सौख्यदम्।
पतत्त्रिहिंसकस्यात्र, महीभर्तुर्निदर्शनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—"सहसा कार्य करनेसे परिणाममें सुख नही मिलता। इसपर पक्षीके हिंसक राजाका दृष्टान्त इस प्रकार है कि:—"

इस भरतक्षेत्रमें शत्रुंजय नामक एक राजा था, जिसे किसी पुरूषने एक उत्तम लक्षणवाला घोडा लाकर भेट किया। उसे देख राजाने विचार किया कि—"इस अश्वके शरीरकी शोभा तो प्रशसनीय है, परन्तु इसकी गति देखना चाहिये।" कहा भी है कि:—

जवो हि सप्तेः परमं विभूषणं
नृपांगनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्यैव मुनेरपि क्षमा
पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनः ॥ २ ॥

भावार्थः—"अश्वका भूषण गति है, राजपत्नी तथा तपस्वी पुरूषका भूषण कृशपन है, ब्राह्मणका भूषण विद्या ही है, मुनिका भूषण क्षमा है, और शस्त्रविद्याके बलसे आजीविका करनेवाले पुरुषका भूषण पराक्रम है।"

फिर वह राजा घोडे पर सवार हो अरण्यमें उसे दौड़ाने लगा। इतनेमें वह पवनवेगी घोडा ऐसा दौटा कि उसका सर्व सैन्य पीछे रह गया। राजा जैसे जैसे उसके वेगको रोकनेके लिए उसकी लगाम खिंचने लगा, वैसे वैसे वह अश्व अधिक अधिक तेज दौडने लगा फिर राजाने थक कर लगाम ढ़ीली छोडी कि अश्व तुरन्त ही खडा रह गया। इससे राजाको भान हुआ कि इस अश्वको विपरीत शिक्षा दी गई है। फिर राजाने घोडेसे उतर उसका जीन उतारा कि उसकी संधिये टूटजानेसे वह पृथ्वी पर गिर कर मर गया। राजा क्षुधा और तृषासे पीडित होकर अकेला उस भयंकर अटवीमें भटकने लगा। भटकते एक वडे वड वृक्षको देखकर राजा थका हुआ होनेसे उस वृक्षकी छायामें जाकर बैठ गया। फिर वह इधर उधर देखने लगा कि उसे उसी वृक्षकी शाखासे पानीकी बूंदे गिरती दिखाई दी। राजाने सोचा कि:—"वर्षाकालमें पड़ा जल अबतक शाखाके छिद्रमें भरा रहा होगा, जो अब गिर रहा है।" ऐसा विचार कर उसके प्यासे होनेसे उसने खाखरेके पत्तोंका एक दोना बनाकर उसके नीचे रक्खा। थोडीसी देरमें वह दोना काले और मेले पानीसे भर गया। उसे उठाकर राजा ज्योंहि उसको पीना चाहता है, कि उसी समय कोई पक्षी उस वृक्षकी शाखासे उतर जलपात्र राजाके हाथसे निचे गिरा दीया, वापस उसी वृक्षकी शाखा पर जाकर बैठ जाता है। राजाने निराश होकर फिरसे दोना रक्खा जो भर गया। उसे पीने लगा

व्याख्यान २२८

सहसा कार्य नहीं करनेके विषयमें

सहसा विहितं कर्म, न स्यादायति सौख्यदम् ।
पतत्त्रिहिंसकस्यात्र, महीभर्तुर्निदर्शनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—“सहसा कार्य करनेसे परिणाममें सुख नहीं मिलता। इसपर पक्षीके हिंसक राजाका दृष्टान्त इस प्रकार है किः—”

इस भरतक्षेत्रमें शत्रुंजय नामक एक राजा था, जिसे किसी पुरुषने एक उत्तम लक्षणवाला घोडा लाकर भेट किया। उसे देख राजाने विचार किया कि—“इस अश्वके शरीरकी शोभा तो प्रशसनीय है, परन्तु इसकी गति देखना चाहिये।” कहा भी है किः—

जवो हि सप्तेः परमं विभूषणं
नृपांगनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्यैव मुनेरपि क्षमा
पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनः॥ २ ॥

भावार्थः—“अश्वका भूषण गति है, राजपत्नी तथा तपस्वी पुरुषका भूषण कृशपन है, ब्राह्मणका भूषण विद्या ही है, मुनिका भूषण क्षमा है, और शस्त्रविद्याके बलसे आजीविका करनेवाले पुरुषका भूषण पराक्रम है।”

उसके मनुष्यों द्वारा उठवा, अपने नगरमें ला, चन्दनके काष्ठसे उसका अग्निसंस्कार कराया, और उसे जलांजलि देकर राजाने उसके महलमें प्रवेश किया। वहां शोकातुर होकर बैठा था, कि मंत्री सामन्त आदिने उससे पूछा कि—"हे नाथ! आपने इस पक्षीका प्रेतकार्य किया, जिसका क्या कारण है?" इसपर राजाने उसके किये महा उपकारका वर्णन किया, और कहा कि,—"इस पक्षीको मैं जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता।" बिना विचारे कार्य करनेसे जैसे उस राजाको पश्चाताप हुअ उसी प्रकार यदि कोई प्राणी बिना विचारे सहसा कार्य करे तो उसे भी वैसा ही पश्चाताप होता है।

इस दृष्टान्तका उपनय इस प्रकार है कि। चारगतिमें भ्रमण करने वाले जीव राजाके समान हैं। उस अजरामर (मोक्ष) स्थान देने वाले पक्षी समान मनुष्य भवको प्राप्त कर अविरति आदिसे जो मनुष्यभवको वृथा खो देता है, वह अत्यन्त शोकका भाजन होता है, अथवा पक्षी समान समग्र जीवका उपकार करने वाली जिनवाणीको प्राप्त कर जो प्राणी मिथ्यात्वरूपी चाबुकसे उसका विनाश करते हैं, उसे महा मूर्ख समझना चाहिये। कहा भी है कि:—

शिलातलाभे हृदि ते वहंति
विशन्ति सिद्धांतरसा न चांतः।
यदत्र नो जीवदयार्द्रता ते
न भावनांकुरततिश्च लभ्या॥ १॥

ये कालादिक एक एक किसी समय कार्यकी अपेक्षासे कारणभूत होते हैं। इस विषयमें द्वितीय श्रुतस्कंधमें कहा है कि– "नत्थि धम्मे अधम्मे अ" आदि अर्थात् श्रुत चारित्रात्मक नामक जो आत्माका परिणाम है, वह कर्मक्षयका कारण होनेसे धर्म और मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योगरूप जो आत्माके परिणाम हैं, वे कर्मबन्धके कारण होनेसे अधर्म कहलाते हैं। इसप्रकारके धर्म और अधर्म कालवादी, ईश्वर-वादी आदिके मतमें नहीं है। परन्तु धर्म अधर्म विना मात्र काल आदि ही सर्व जगतकी विचित्रताका कारण है, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये, क्योंकि धर्म अधर्म विना संसार की विचित्रता नही हो सकती। धर्म ही सम्यक् दर्शन है, और अधर्म मिथ्या दर्शन है। सम्यक्दृष्टि इन पांचों कारण रूपसे जानते हैं, क्योंकि इन्होके द्वारा उन्होंने सृष्टिकी सिद्धि देखी है, जैसे माता–पिताके उद्यमसे रुधिर और वीर्यका सम्बन्ध होता हैं, कर्मद्वारा उसमें जीव अवतरित होता है, उस जीवका सत् असत् कर्मके अनुसार सुख दुखके हेतुरूप वस्तुओंका सम्बन्ध प्रतिक्षण नियतिवश होता है, स्वभाव द्वारा जीवमें पशु, पक्षी, स्त्री, मनुष्य पुरुष आदिके स्वभाव उत्पन्न होते हैं, और फिर काल द्वारा जन्म और बाल्यावस्था, युवा-वस्था आदि भाव प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सब पदार्थोंमें यथायोग्य समझ लेना चाहिये।

जैसे पांच पुरुषोंसे उठाया जानेवाला भार यदि उनमेंसे एक पुरुषकी कमी कर दी जाये तो वह नही उठाया जा

गुरु—कर्मोका क्षय नही हुआ था, तथा पुरुषार्थ और पंडितवीर्यका उल्लास नहीं हुआ था, इसलिये सम्यक्त्व प्राप्त हो जानेपर भी मुक्ति न हो सकी।

शिष्य—हे गुरु ! शालिभद्रने मोक्षके लिए अनेको उद्यम किये थे, फिर भी वे मोक्षमें नहीं गये ?

गुरु—पूर्वकृत शुभ कर्म अवशेष थे, इसलिये जब तक उन्हें मुक्ति कैसे मिल सकती थी ?

शिष्य—हे भगवान् ! मरूदेवा माताको चार कारण मिल गये थे, फिर भी उन्होंने मोक्षके लिये कोई प्रयास नही किया था, फिर वे मोक्षमें कैसे चल गये ?

गुरु—मरुदेवा माताने शुक्ल ध्यानद्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो कर अनन्तवीर्य (पुरुपार्थ)का उल्लास किया था, इसलिये उन्हे सिद्धि मिली थी।

इसप्रकार होनेसे स्याद्वादके मतानुसार काल, स्वभाव आदि पांचों हेतु मिलने पर ही सर्व कार्य सिद्धि हो सकता है। जो इन पांचोंके समुदायको नहीं मानते, उन्हें जैन धर्मको नही मानने वाला समझना चाहिये।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य एकोनविंशत्याधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २२९ ॥]

व्याख्यान २३०

भावी भाव

भवितव्यविपर्यासं, मत्तोऽसौ दशकंधरः ।
कर्तुं समर्थो नैवाभूत्, स श्रीपूज्यैः प्रबोधितः ॥१॥

भावार्थ :—"मदोन्मत्त रावण भी भवितव्यताको अन्यथा करनेमें समर्थ न हो सका । उसे पूज्य मुनि महाराजने प्रबोधित किया ।"

त्रिकुटाचल पर बसी हुई लंकानगरीमे रावण नामक राजा राज्य करता । शैवशास्त्रमें कहा है कि उसके दस शिर और बीस हाथ थे । उसने इंद्रको जीता था, दस लोकपालोंको उसने अपने कोटवाल बना रक्खे थे । उसके वहां वायु झाडू लगाती थी, मेघ उसके घर पर पानी भरता था, नवदुर्गा देवियें उसकी आरती उतारती थी, खरनामक दैत्य घंटा बजाता था, नव ग्रह शैयाका रक्षण करते थे, कुबेर धान्यके बीज बोता था, वरूण उनमें पानी सींचता था, मलराजा खेती करता था, सोते समय उस प्रतिवासुदेव रावणका वक्षस्थल दशमस्तक के प्रतिबिम्ब जिसमें प्रतिभासित होते थे, ऐसे हारसे सुशोभित था, वह राक्षसी विद्यामें बड़ा बलवान था, जगतको तृण तुल्य मानता था, और "मैं अजर अमर हूं" ऐसे गर्वसे गर्विष्ट था ।"

कुमारको मंत्रियोंके साथ भेजनेकी तैयारी की। वे इस समय सांढ पर बैठकर प्रयाणकी तैयारीमें हैं, अतः हे रावण राजा! यदि भावीभाव मिथ्या करनेकी तुममें शक्ति हो तो इसे अजमा कर देख लो।"

रावणने तत्काल तक्षक नागको बुलाकर आज्ञा दि कि, "हे नाग! यहांसे एकदम जाकर रत्नकुमारको ऐसा दंश की वो तुरन्त मर जाये।" इस आज्ञाके होने ही तक्षक नाग तुरन्त वहां पहुंचा, और जब कुमारका एक पग सांढके पागडेमें व दूसरा भूमि पर था, कि उसी अवसर पर उसने उसे काट डाला, जिससे कुमार पृथ्वी पर गिर पड़ा। राजकन्याको भी अपने दो राक्षस सेवकों द्वारा मंगवा रावणने नैमित्तिकको बतलाया। नैमित्तिकने भी उस कन्याको पहचाना। फिर रावणने तिमंगलाके स्वरुपवाली एक राक्षसीको बुलवाया, और उसने एक पेटीमें सात दिन तकके लिये पर्याप्त अन्न-जलकी व्यवस्था करा राजकुमारीको उसमें बिठा दिया। फिर उस पेटिको बंधकर तिमंगला राक्षसीके मुंहमें रख दी, और उसे विसर्जन करते समय चेतवनी दी कि, "तू सात दिन तक अपार समुद्रमें जा इस पेटी सहित ऊँचा मुंह रख कर रहना, और जब मैं बुलाऊं, उस समय ही यहां आना।" ऐसा कह उसे विदा किया। फिर रावणने नैमितिकसे कहा कि, "मैं भवितव्यताको कैसी मिथ्या करता हूं, उसे तुम देखते रहना।" नैमित्तिया मौन रहा।

इस ओर जब रत्नदत्त कुमार मूर्छित हो गया, तो रत्नसेन राजाने अनेकों मंत्रवादियोंको बुलवाया, जो गारुडी मंत्र आदिसे विष उतारने लगे, परन्तु कुमार किसी भी प्रकारसे जागृत न हो सका, इसलिये राजाने तब नगरमें घोषणा करा दि तो एक वृद्ध पुरुषने आकर कहा कि, "हे राजन्! विषकी मूर्छा छ महिने तक रहती है, इसलिये इसे जलमें बहा दो, किन्तु अग्नि संस्कार मत करना" इसप्रकार सुन राजाने उस कुमारके शरीर प्रमाण पेटी बनवा उसमें कुमारको सुलाया, और उस पेटीको गंगाके प्रवाहमें बहते छोड़ दिया, जल प्रवाहमें भटकती भटकती वह पेटी समुद्रके समीप पहुंची, वहां खारे पानीके प्रभावसे कुमारकी विषजन्य मूर्छा कुछ कम पड़ी। सातवें दिन पेटी लेकर तिमंगला राक्षसी गंगा और समुद्रके संगम पर आई, वहां पेटीको किनारे पर रख वह जलक्रीड़ा करने लगी। फिर रत्नवती भी पेटीका ढकन खोल क्षणभर के लिये क्रिडा करनेको बाहर निकली कि उसी समय उसने पवनसे हिलोरे लेती एक पेटीको उसके समीप आते देखा. इसलिये उसने उसे नजदीक खींच उसके हाथसे ही उसे खोला, तो उसमें किसी राजकुमारको विष मूर्छित स्थितमें देख अपने पासकी विष हरण मुद्रिकाका पानी उस पर छिडका, जिससे कुमार सचेत हो गया। उसे देख जिस कुमारका स्वरूप उसने चित्रमें देखा था, उसकी समानतासे उसने उस कुमारको पहिचान लिया कि, "मुझे पिताने जिसको दिया था, यह वह ही रत्नदत्त कुमार है।" ऐसा

भावार्थ :–"कर्मकी ही प्रधानता है, उसमें शुभ ग्रह भी क्या कर सकते हैं? क्योंकि वसिष्ठ द्वारा निश्चय किये राज्याभिषेकके मुहुर्त पर भी रामका वनवास जाना पड़ा " अपितु

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शील
विद्यापि नैव न च जन्मकृतापि सेवा ।
कर्माणि पूर्व तपसा किल संचितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह वृक्षाः ॥२॥

भावार्थ :–" पुरुषको उसकी आकृति कोई फल नहीं देती, शील कोइ फल नहीं देता, विद्या कोइ फल नहीं देती, इसीप्रकार जन्म पर्यन्तकी सेवा भी कोइ फल नही देती परन्तु पूर्व जन्ममें की हुई तपस्या द्वारा संचित कर्म ही समय आने पर वृक्षके समान फल देते हैं ।'

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारं
नैमित्तिका ग्रहकृतं प्रवदन्ति दोषम् ।
भूतोपसर्गमथ मंत्रविदो वदन्ति
कर्मैव शुध्धमतयो यतयो गृणन्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—" वैद्यलोक वात, पित्त, और कफका विकार बतलाते हैं, जोशीलोक ग्रह-दोष कहते हैं । और मंत्र

जाननेवाले भूत-प्रेत आदिका उपद्रव बताते है, परंतु शुद्ध मतवाले यति तो मात्र कर्मका ही दोष होना कहते हैं।"

कई तो निम्न लिखित नाम कर्मके पर्याय ही बतलाते हैं:-

विधिर्विधाता नियतिः स्वभावः
कालो ग्रहाश्चेश्वर कर्मदेवाः
भाग्यानि पुण्यानि यमः कृतांतः
पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ४ ॥

भावार्थः—"विधि, विधाता, नियति, स्वभाव, काल, ग्रह, ईश्वर, कर्म, दैव, भाग्य, पुण्य, यम और कृतान्त, ये सब पूर्वकृत कर्मके पर्यायवाची नाम हैं।"

यथा धेनुसहस्त्रेषु, वत्सो विंदति मातरम् ।
एवं पूर्वकृतं कर्म, कर्तारमनुधावति ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे बछड़ा हजारों गायोंमें अपनी माता को पहिचान कर उसके पीछे जाता है, उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म उसके कर्ताके पीछे पीछे जाता है।"

यथा छायातपौ नित्यं, सुसंबद्धौ परस्परम् ।
एवं कर्म च कर्ता च, संश्लिष्टावितरेतरम् ॥१॥

भावार्थ:-"जैसे धूप और छाया परस्पर संबन्धित है, वैसे ही कर्म और उसका कर्ता भी परस्पर मिला हुआ है।"

वर कौन होगा ?" "गुरुने कहा कि—यह कर्मरेख तेरा पति होगा" इसप्रकार गुरुके वचन सुन मानो वज्राघात हुआ हो इस तरह वह मूर्छित हो गई । फिर शुद्धि आने पर विचारने लगी कि, "अरेरे ! यह निर्धनका लड़का मेरा पति होगा, इससे तो मेरा मर जाना ही श्रेष्ठ है, परन्तु यदि इस कर्मरेखको ही मरवा डालूं, तो फिर यह मेरा स्वामी कैसे होगा ?" ऐसा विचार वह क्रोध सहित अपने घर गई । अश्रुओंसे उसकी कांचली भीज गई, और वह मुंह ढक कर सो रही । फिर जब भोजन समय राजाने उसकी खोज कराई कि, "भाविनी कहां गई ।" तो पत्ता चला कि-वह तो कोपगृहमें सोती है । यह जानकर राजा उसके पास गया और उसे उसके उत्संगमें बिठा कर दुःखका कारण पूछा । जिसपर उसने गुरुके कहे वचन और अपना विचार कह सुनाया । यह सुनकर राजाने उसके मंत्रियोंसे पूछा कि—"इस विषयमें क्या करना चाहिये ?" मंत्रियोंने कहा कि-"हे महाराज ! किसी कारणके विना पर पुरूषको मारना राजाको योग्य नही है, इसलिये उस कर्मरेखके पिताको बुलवा उसे कुछ द्रव्य देकर उस पुत्रको ईससे ले लेना चाहिये । फिर जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा किया जा सकेगा, और ऐसा करने पर हमारा अन्याय भी नहीं कहलायेगा ।" फिर राजाने उस धनदत्त श्रेष्टीको बुलवा कर अपना विचार प्रगट किया । वज्रके घातसे भी अधिक कठोर वचन सुन नेत्रोंमें अश्रुभर वह धनदत्त बोला कि, "हे देव । पुत्र कौन ? और

मैं भी कौन ? मेरा समग्र परिवार ही आपका है, आपकी जैसी इच्छा हो, ऐसा कीजिये।" राजा भी एक ओर पाप और एक ओर कपूत नहीं ? सहसा कठिन परिस्थितिमें पड़ गया अन्तमें कोई उपाय न देख उसने धर्मदेवको बुला उसका वध करानेके लिए उसे एक चाण्डालको सुपुर्द कर दिया चाण्डाल उसे लेकर गांवके बाहर शूलीके पास गया। वहां उसने यह विचार किया कि,—"बालहत्या करना मुझे योग्य नहीं है।" धर्मदेवके बदले एक पुतलेको शूली पर चढ़ा उसे छोड़ दिया, राजाका अभिमान जान धर्मदेव भी शीघ्रतया सहसा वहांसे तत्काल भाग गया।

श्रीपुर नगरमें श्रीदत्त नामक एक श्रेष्ठी रहता था, जिसके श्रीमती नामक एक पुत्रि थी। उस शेठको रात्रिमें कुलदेवीने आकर स्वप्नमें कहा कि—"हे श्रेष्ठी ! इस गांवके बाहर कल प्रातःकाल उत्तर दिशाके मार्गमें सोते हुए जिस बालकके पास तेरी काली गाय खड़ी हो, उस बालकके साथ तेरी पुत्री श्रीमतीका विवाह कर देना।" अब धर्मदेव कुमार भी जब सम्पूर्ण रात्रिभर मार्गमें चलते चलते अत्यन्त थक गया, तो वह श्रीपुर गांवके समीप आ सो रहा। श्रीदत्त श्रेष्ठी प्रातःकाल गोत्रदेवीके वचनानुसार वहां आया, और उसीप्रकार देख उसे उसके घर ले गया, और उसका लग्न अपनी पुत्रीके साथ कर दिया। हस्तमेलाप समय श्रेष्ठीने उसके घरकी सब लक्ष्मी उसे अर्पण कर दी।

रहस्यभरी बातें कहीं जिसे सुन भाविनीने लज्जित हो मुंह निचा कर लिया, इस पर उसने उसे आश्वासन दे प्रिति पूर्वक कहा कि:—

त्रपायाः पद्मपत्राक्षि, तन्नास्त्यवसरोऽधुना ।
लोकोक्तिरिति यद्विप्रेणातीता नोच्यते तिथिः ॥१॥

भावार्थः— "हे कमलाक्षि! लोकमे भी ऐसा कहा जाता हैं, कि गइ तिथिको ब्राह्मण भी नही पढ़ता तो फिर अब तुझे लज्जित होने का समय नही हैं।"

उसीप्रकार हे कृशोदरी! कर्म की गति गहन हैं. इस लिये पूर्व के प्रौढ़ पंडितोंने दैव, विधि आदि को छोड कर कर्मको ही नमस्कार किया है। कहा भी है कि:—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्मांडभांडोदरे।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्रम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥१

भावार्थ :- "जिसने ब्रह्माको कुम्भारके समान ब्रह्माण्ड रूपीपात्रको रचनेके लिये नियमित किया है, जिसने विष्णुको दश अवतार द्वारा गहन संकटमें डाला है, जिसने महादेवको हाथमें सराव संपूट देकर भिक्षाटन कराया है, और जिसके कारण सूर्य सदैव गगनमें भटकता रहता है ऐसे कर्मको नमस्कार हो।"

आदि पतिके वचन सुनकर भाविनीने लज्जाका त्याग किया, फिर उसने यह वृतान्त अपने पिता रिपुमर्दनको कहा, और वह पतिभक्तिमें तत्पर हुई ।

तदन्तर कर्मरेख राजाने गुरुसे देशना सुनकर विचार किया कि—"कर्मका फल मने इस भवमें प्रत्यक्ष देखा है इसलिये गुरू वचन प्रमाणित है।" फिर उसने कर्म पर विजय प्राप्त करनेके लिये वृद्धावस्थामें चारित्र ग्रहण किया और दुस्सह तपस्या कर सद्गतिका भाजन बना !

"भावि भावको मिथ्या करनेमें कोई समर्थ नही है, यह इस दृष्टान्तका तात्पर्य है। यहां कर्मके बलसे ही भाविनी और कर्मरेखाका संयोग हुआ है।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य एकत्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२३१॥]

वह कुमार आठ वर्षका हुआ तब उसे दीक्षा दी, परन्तु चारित्रावरणका उदय होनेसे उसके चित्तमें विषयवासना उत्पन्न हो गई, इसलिये उसने उसकी मातासे कहा कि-"हे माता! विषय सुखका अनुभव कर फिर मैं फिरसे व्रत ग्रहण करूंगा।" उसकी माताने कहा कि,-"हे पुत्र! ऐसे संयम सुखका त्याग कर तुच्छ विषयोंमें क्यों आशक्त होता है! फिर भी यदि तेरी संयमकी इच्छा न हो तो मेरे कहनेसे बारह वर्ष मेरे पास रहकर जिनेश्वरकी वाणी सुन" ऐसे अपनी माताके वचन सुन वह उस अवधि तक उसके पास रहा, और उसकी माता (साध्वी) के पास सदैव वैराग्यमय वाणी सुनने लगा, परन्तु उसके मनमें लेश मात्र भी वैराग्य उत्पन्न नही हुआ।

बारह वर्षके समाप्त होनेपर जब उसने उसकी मातासे आज्ञा मांगी, तो उसने कहा कि,-"हे पुत्र! तूं मेरी गुरूणीजी से जाकर आज्ञा मांग।" तिस पर उसने बड़ी साध्वीके पास जा आज्ञा मांगी। साध्वीने कहा कि,-"हमारे पास रह बारह वर्ष देशना सुन।" उसने स्वीकार किया और उनके पास रह अनेक सूत्रोंके अर्थ सुने, परन्तु उसे कुछ भी प्रतिबोध नहीं हुआ। अवधिके पूर्ण होनेपर उसने भी आज्ञा मांगी कि-"आपके आग्रहसे बड़ा कष्ट सहन कर भी मैं अब तक रहा हूं, इसलिये अब जानेकी आज्ञा दीजिये।" यह सुन उन्होंने कहा कि-"हमारे गुरू उपाध्यायजी है, इसलिये उनकी आज्ञा लेकर फिर जाओ।" इसपर उसने

उपाध्यायजीसे जाकर आज्ञा मांगी । उपाध्यायजीने कहा
कि,—"बारह वर्ष हमारे पास रह देशना सुन ।" उसने
यह बात भी स्वीकार की, परन्तु कुछ भी बोध प्राप्त नहीं
हुआ । अवधि पूर्ण होनेपर उपाध्यायजीसे आज्ञा मांगी, उस
समय उन्होंने कहा कि—"मेरे भी अधिपति सूरिके पास जा
उनसे मेरी इच्छा पूर्तिके लिये निवेदन कर" उसने वैसा ही
किया, आचार्यने भी उसे बारह वर्ष उनके पास रहनेको कहा.
इसलिये वह उस अवधि तक उनके पास रह देशना सुनने
लगा । इसप्रकार माता आदिके आग्रहसे उसने अड़तालीस
वर्ष पर्यन्त दीक्षाका पालन किया, फिर भी उसका चित्त
विषयसे पराङ्मुख नहीं हुआ । फिर अवधि पूर्ण होनेपर
उसने सूरिसे कहा कि,—"हे स्वामी ! मैं जाता हूं
सुन [illegible] होनेसे सूरि तो इस बात पर मौन
लेकिन वह अपने आप ही वहांसे चल दिया । आ
उसकी माताने पूर्व अवस्था (गृहस्थपन) में साथ
रत्नकंबल तथा मुद्रा (अंगूठी) उसे दी । उन्हें ले
संयमके सब चिन्होंका त्यागकर वह अनुक्रमसे साके
राजसभामें पहुंचा । वहां कोई नर्तकी नृत्य कर रह
उस नृत्यमें सर्व सभासद उस नृत्यको देख
कर बारंबार उसे धन्यवाद दे रहे थे, और उस न
प्रशंसा कर रहे थे । क्षुल्लकने भी उसे देख उसमें
हो गया । उस समय बहुत देर नृत्य करनेसे नर्तकी
जानेसे उसके नेत्र निद्रासे घूमने लगी जिसे देख
अक्काने संगीतके आलापमें उससे कहा कि :—

उसी नगरमें शालिवाहन राजाके पूर्वभवका जीव एक श्रेष्ठी रहता था । कहा है कि :-

धर्मकीर्तिविहीनस्य, जीविते न नरस्य किम् ।
यो धर्मकीर्तिवान् दानी, तस्य जीवितमुच्यते ॥२॥

भावार्थ :-" धर्म एवं कीर्तिहीन मनुष्यका जीवनसे क्या लाभ ? परन्तु जो धर्म और कीर्तिवाला होनेके साथ साथ दातार है, उसीका जीवन सफल है ।"

वादमें उस सरोवरकी पाल पर मुनिको दान देते हुए उस श्रेष्टीने उस माछलेको देखा, जिससे उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया, अन्तमें श्रेष्ठीका जीव मरकर प्रतिष्टान नगरमें शालिवाहन नामक राजा हुआ ।

एकबार शालिवाहन राजा उद्यानमें फिरता फिरता उसी सरोवरके किनारे एक वृक्षकी छायामें आकर बैठा । उसे बड़ा समृद्धिशाली देखकर उस माछलेने जाना कि-" पूर्वभवके दानका यह फल हैं ।" फिर लोगोंको बोध करनेके लिए उस माछलेने मनुष्य भाषामें कहा कि :-

को जीवति, को जीवति, को जीवति वदति वारिमध्यस्थः
मत्स्यः प्रबोधविधये, लोकानां ललितविज्ञानम् ॥१॥

भावार्थ :-" कौन जीवित है ! कौन जीवित है ? कौन जीवित है ? इसप्रकार जलमें रहनेवाला मत्स्य लोगोंको बोध करनेके लिये तीन बार सुन्दर शब्दोंमें बोला ।"

इस प्रकार मत्स्यके वचन सुनकर राजा आदि सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर सभामें आ राजाने अपने पंडितोंसे उस मत्स्यके वचनोंका स्वरूप पूछा, परन्तु चित्तके चमत्कारिक उन वचनोंका तात्पर्य कोई नहीं कह सका। तदन्तर श्री कालिकाचार्यने उस मत्स्यके मनका भाव जानकर उसके ही समक्ष राजासे कहा कि:—

को जीवति गुणा यस्य, यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य, निष्फलं तस्य जीवितम् ॥१॥

भावार्थ :–"कौन जीवित है? जिनमें गुण और धर्म विद्यमान हैं वे ही जीवित हैं। जो गुण और धर्मसे रहित हैं, उनका जीवित निष्फल है।" अपितु

यस्मिञ्जीवति, जीवंति सज्जना मुनयस्तथा ।
सदा परोपकारी च, स जातः स च जीवति ॥२॥

भावार्थ :–"जिनके जीवित रहनेसे सज्जन पुरुष तथा मुनि जीवित रहते हैं, और जो सदा परोपकारी हैं, उन्हींका जन्म सफल है और वे ही जीवित हैं।"

पंचमेऽह्नि षष्ठे वा, भुंक्ते अनवद्यमेव यः ।
धर्मार्थी चाप्रमादी च, स वारिचर जीवति ॥३॥

भावार्थ :–"हे जलचर प्राणी! जो पांचवें या छठ्ठे दिन निर्दोष भोजन करते हैं, जो धर्मके अभिलाषी हैं, और अप्रमादी हैं वे ही पुरुष जीवित हैं।"

आचार्यने जब इसमेंका प्रथम श्लोक कहा, उस समय मत्स्यने दो बार "कौन जीवित है" इस पदका उच्चारण किया। जब आचार्यने दूसरा श्लोक कहा, तब उसने उपरोक्त पदका एक बार उच्चारण किया, और तीसरे श्लोकके बोलने पर वह मौन धारण कर बैठ रहा। फिर राजाने सूरिमहाराजसे कहा कि—"हे स्वामी! जलचर प्राणी भी धर्मक्रिया की इच्छा रखते हैं, यह बडे आश्चर्यकी बात है।" गुरुने कहा कि,—"हे राजा! धर्म और गुणहीन मनुष्यका भव सब जीवोंसे भी अति नीच है। इस विषयमें विद्वानकी वाणीके विलासी कवियोंका कथन हैं कि:—

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरुपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १ ॥

भावार्थ:—"जिन मनुष्योंमें विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं है, वे इस मृत्युलोकमें पृथ्वीके भाररूप होकर मनुष्यके रूपमें मृग ही है, ऐसा समझना चाहिये।"

इस प्रकार विद्वानोंके मुंहसे, निकले वचन सुनकर एक मृगने गर्वित होकर कहा कि—"निंदित मनुष्योंको हमारी उपमा क्योंकर दी जाती हैं? क्योंकि हम तो अनेक गुण वाले है।

भावार्थ :—"हरन वनमें रहते हैं, दूर्वा खाते हैं और निर्झर किसीका आधीन नहीं है, ऐसे पानीको पीते हैं, तिस पर भी जो मनुष्य ऐसे प्राणीको मार डालते हैं, उन मूर्खोंको समझानेमें कौन समर्थ है ?"

अतः निर्गुण मनुष्योंको हमारी उपमा देना अयोग्य है। इसपर मुनिने फिरसे कहा कि:—

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपाः पशवश्चरंति ॥१॥

भावार्थ :—"जिन मनुष्योंमें विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं हैं, वे मृत्युलोकमें पृथ्वीके भाररूप होकर मनुष्योंका रूप धारण करनेवाले पशु हैं।"

यह सुन किसी गायने कहा कि:—

तृणमद्मि दुग्धं धवलं, छगणं गेहस्य मंडनं भवति।
रोगापहारि मुत्रं पुच्छं सुरकोटिसंस्थानम् ॥१॥

भावार्थ :—"मैं घास खाती हूं, परन्तु श्वेत दूध देती हूं, मेरा गोवर घरका भूषण है, मेरा मूत्र रोग नाशक है, और मेरी पूंछमें कोडी देवताओंका स्थान है।"

इसलिये निर्गुण मनुष्यको उक्तगुणीकी उपमा देना योग्य नहीं है। फिर किसी बैलने कहा कि:—

नास्य भारग्रहे शक्तिर्न च वाहगुणक्रिया।
देवागारवलीवर्दस्तथाप्यश्नाति भोजनम् ॥१॥

भावार्थ:—" आपके बतलाये निर्गुण मनुष्यमें मेरे समान भारकी शक्ति नहीं है, वहन गुण भी नही है, तिर भी महादेवके पोठियेके समान वह बैठा बैठा भोजन करता है।" और मैं तो

गुरुशकटधुरंधरस्तृणाशी
समविषमेषु च लांगलापकर्षी।
जगदुपकरणं पवित्रयोनि
र्नरपशुना कथमुपमीयते गवेन्द्रः ॥२॥

भावार्थ :—बड़े गाड़े की धूसरीको धारण करता हूँ घास खाकर जीवता हूँ, समविषम स्थानमें हल खांचता हूँ इस प्रकार जगतका उपकार करता हूँ। अपितु मेरी उत्पत्ति स्थान पवित्र गाय रूप है, अतः नरपशुके साथ मुझे बैलकी उपमा क्यों कर देते हो ?"

इस प्रकार होनेसे ऐसे मनुष्योंको पशुकी उपमा देना भी योग्य नही है।

फिर आचार्यने "येषां न विद्या" इस श्लोकका उच्चारण करते हुए चोथे पदमें "मनुष्यरूपेण तृणोपमानाः" अर्थात् "तृण जैसे हैं"। ऐसा कहा, जिसे सुन तृण बोला कि:—

लंचालुंचितपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगंशिरो।
भ्रातः कुर्कुर मुंच मुंच सहसा निंद्यं वपुः सर्वदा ॥१॥

भावार्थ :—"इसके हाथ दानरहित हैं, इसके कान सत्य वचन श्रवण द्रेषी है, इसके नेत्र साधुपुरुषका दर्शनसे रहित हैं, इसके चरण कभी तीर्थ मार्गमें नहीं गये हैं, इसका पेट रिश्वतसे लूटे द्रव्यसे परीपूर्ण है और इसका मस्तक गर्वसे उन्नत है, इसलिये हे भाई कुर्कुर! सर्वदा निंदित इस शरीरको तू वशीज छोड़ दे।"

इस प्रकार परीक्षा करनेमें जो चतुर कुत्ता है, वह निर्गुण पुरूषकी तुल्य कैसे हो सकता है?

फिर प्रवीण सूरिने उस श्लोकके चोथे पदमें कहा कि- मनुष्य रूपेण खराश्चरंति।" वह मनुष्य रूपमें गधा है।" उसे सुन गर्दभने कहा कि:—

शीतोष्णं नैव जानामि, भारं सर्वं वहामि च।
तृणभक्षणसंतुष्टः प्रत्यहं भद्रकाकृतिः ॥१॥

भावार्थ :—"मैं शीत और घामका कोई विचार नहीं करता, सब प्रकारका भार वहन करता हूं, तृण भक्षण कर संतोष रखता हूं, और निरन्तर भोली आकृतिवाला हूं।"

स्त्रियं दूरं गतं गेहे, प्राप्तं जानामि तत्क्षणात्।
न विश्वसामि कस्यापि, कान्ते चालयकारकः ॥२॥

भावार्थ :—" दूरदेश गये पतिको घर लौटते देख कर मैं शीघ्र उसकी सूचना देता हूं, किसीका विश्वास नहीं करता, और वर्षाकालमें घोंसला बना कर रहता हूं।"

किसी स्त्रीने कौएको सोनेके पींजरेमें रखा देखकर उसकी सखीने पूछा कि तोतेको तो सब कोई पींजरेमें रखते हैं, परन्तु तूने ऐसे कौएको क्यों रखा है? इस पर उसने कहा कि :-

अग्रस्थः सखि लक्षयोजनगतस्यापि प्रियस्यागमं।
वेत्त्याख्याति च धिक् शुकादय इमे सर्वे पठंतः शठाः।
मत्कांतस्य वियोगतापदहनज्वालावलीचंदनं।
काकस्तेन गुणेन कांचनमये व्यापारितः पञ्जरे ॥२॥

भावार्थ :-" हे सखी! कौआ लाख योजन दूर बैठे पतिका आगमन यहां बैठा जान जाता है, और बतला देता है, ये तोते आदि सब पढ़े हुए हैं, किन्तु मूर्ख हैं और यह कौआ तो पतिके वियोग तापरूपी अग्नि ज्वालकी समुहमें, चन्दनके समान है, इसलिए इस गुणके कारण मैंने इसे सोनेके पींजरेमें रखा है।"

फिरसे कविने कहा कि-मनुष्य रुपेण हि ताम्रचूड़ाः। "वे मनुष्य रुपमें मुर्गा हैं" इसे सुन मुर्गेने कहा कि-मेरे गुण सुनिये-एक कवि मेरे विषयमें कहता है कि :-

" जैसी आपकी इच्छा हो।" यह सुन सूरिने विचार किया कि, " अहो ! ये शिष्य कैसे धृष्ट हैं ? बिलकुल भी लज्जित नहीं होते।" ऐसा विचार कर क्रोधसे चारों मुनियोंको वन्दना कर वांदणा दीये, परन्तु केवली तो यह जानते थे कि यह षट्स्थानमें रहे कषाय कंडक द्वारा वन्दना करता है। उनके वन्दना करने पर ज्ञानियोंने आचार्यसे कहा कि " तुमने कषाय कंडक[1] की वृद्धि द्वारा द्रव्यसे वन्दना की है, अब भावसे वन्दना करो," यह सुन सूरिने कहा कि,- द्रव्य वंदन और भाव वन्दन कैसे जाना ? और कषाय कंडककी वृद्धि कैसे जानी। क्या आपने कोई अतिशय ज्ञान प्राप्त कर लिया है ? केवलीने " हा " कहा। इस पर सूरिने फिर पूछा कि,-" छाद्मस्थिक ज्ञान या केवल ज्ञान ?" तब उन्होंने जवाब दिया कि,-" सादि अनंत भावसे केवल ज्ञान।" यह सुन आचार्य हर्षसे रोमांचित हो विचार करने लगे कि-" अहो ! मुझ मंदभागीने सर्वदर्शी सर्वज्ञ की आशातना की " ऐसा विचार कर संवेग प्राप्त किया और भाव पूर्वक वन्दना करते हुए उसी कषाक कंडक स्थान से वापस हुए, उन्होनें अपूर्वकरण नामक गुणस्थानक में प्रवेश कीया, और क्षपक श्रेणी मांड केवलज्ञान के भाजन हुए।

गुरूको वन्दना करनेकि विधि श्री गुरूवंदन भाष्यमे बताई है, जो इस प्रकार है किः—

---

१ इन षट्स्थान कंडकादिका विस्तार श्री कम्मपयडी की टीकासे जान लेना, अनुभाग बंधनके विवरनमें यह अधिकार है।

पणनाम पणाहरणा, अजुग्ग पण जुग्ग पण चउ अदाया ।
चउ दाय पण निसेहा, चउ अणिसेहट्ट कारणया ॥१॥

भावार्थ :-“ १ वन्दन के पांच नाम हैं, २. उस पर पांच उदाहरण हैं, ३. पांच वन्दन करने के अयोग्य हैं, ४. पांच वन्दन करने योग्य हैं, ५. चार वांदणां नही देते, ६. चार वांदणा देते हैं, ७. पांच वख्त वांदनेका निषेध है, ८. चार वख्त अनिषेध है, ९. वांदनेमें आठ कारण हैं.”

आवस्सय मुहणंतय, तणु पेह पणिस दोस बत्तीसा ।
छ गुण गुरु ठवण दुग्गह, दुछविसक्खर गुरु पणीसा ॥२॥

भावार्थ :-“ १० वांदणेमें पच्चीस आवश्यक ध्यानमें रखने योग्य हैं, पच्चीस मुंहपत्ती की पडिलेहण है, १२ पच्चीस शरीरकी पडिलेहण है, १३ बत्तीस दोष, १४ छ गुण, १५ आचार्यकी स्थापना, १६ दो प्रकार के अवग्रह. १७ वांदनेमें दोसो छ (२०६) अक्षर हैं जिन में पच्चीस गुरु अक्षरहैं ।”

पय अडवन्न छठाणा, छ गुरुवयणासायण तिचीसं ।
दुविही दुवीसदारेहिं, चउसया बाणउइ ठाणा ॥३॥

भावार्थ :-“ १८. अठावन पद. १९. छ स्थान, २०. छ गुरु वचन २१. तेतीस आशातना २२. और दो विधि; इस प्रकार बाइस द्वार बतलाये गये हैं, जिन के उत्तर स्थान चारसो बाणवें (४९२) होते हैं ।

व्याख्यान २३५

ज्ञानविज्ञानयुक्तक्रियाके विषयमें

ज्ञानविज्ञानसंयुक्ता, या क्रियात्रविधीयते।
सावश्यं फलदा पुंसां, द्वाभ्यामुक्तमतः शिवम् ॥१॥

भावार्थ :-"ज्ञान और विज्ञान सहित जो क्रिया की जाती है, वह मनुष्यको अवश्य फल देने वाली होती है।"

दृष्टान्त निम्नस्थ है।

श्री निग्रंथ गच्छमें धर्मबुद्धि नामक एक छोटे साधु थे। वे शास्त्रके अभ्यासमें कुशल थे, परंतु १. हेय, २. ज्ञेय, ३. उपादेय, ४. उत्सर्ग और ५. अपवाद के स्वरुप को समझ कर उसका यथायोग्य स्थापन करना नहीं जानते थे। उन्होंने धर्मबुद्धि से चातुर्मास में ऐसा अभिग्रह लिया कि:- "इस चातुर्मासमें मैं ग्लान (रुग्ण) साधु की वैयावृत्य करूंगा।" परन्तु उस चातुर्मास में कोई साधु बिमार नहीं पडें, इससे उन्हे किसी की सेवा करनेका अवसर प्राप्त नहीं हुआ। वह मुनि खेदके साथ विचार करने लगा कि, "अन्य सब साधुओंके अभिग्रह तो पूर्ण हो चुके हैं, परन्तु मेरा अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ।" इसप्रकार विचार करनेसे वे पापका भागी हुए, उन्होंने बादमें यह बात गुरुसे कही कि:-"हे स्वामी! इस चातुर्मासमें कोई साधु बिमार

नहीं हुए, जिससे मेरा अभिग्रह पूर्ण न हो सका जिसका मुझे बड़ा शोक है।" यह सुन गुरूने कहा कि, "प्रत्येक क्रिया ज्ञान विज्ञान द्वारा करने पर ही वह फलीभूत हो सकती है" इस पर एक व्यवहारिक दृष्टान्त ईस प्रकार है कि :-

किसी श्रेष्टीने एक बार कुछ क्षत्रियोंको उस के घरमें जीमने को बिठाया। उस घर में एक बड़ा ऊँचा बांधा हुआ था। उस घडेमें सर्व वस्तुओं को संग्रह करने वाले श्रेष्टीने उसके घरमेंसे निकला हुआ एक सर्प डाल रक्खा था। "उस घडेमें सुवर्ण अलंकार होंगे" ऐसा सोच उन क्षत्रि-योंने रात्रिमें चोर वृति से उस के घरमें प्रवेश कर उस घडेको ले गये। फिर घडेका ढक्कन उठा कर उसमें हाथ डाला कि सर्पके काटने से वे सब मर गये। इसलिये हे शिष्य! वे क्षत्रिय ज्ञानविज्ञान रहित थे, इससे यह न सोच सके कि क्या कभी इस प्रकार खुले घडे में अलंकार रक्खे जा सकते हैं या नहीं जिससे वे दुःखी हुए। इस दृष्टान्त का यह सार है कि-"पढमं नाणं तओ दया" अर्थात् प्रथम ज्ञान और पश्चात् दया" आदि युक्तिपूर्वक दृष्टि पडिलेहणादि सब क्रिया ज्ञान विज्ञान द्वारा ही फलीभूत होती है" अपितु गुरूने कहा कि :—

यादृशं तादृशं वापि, पठितं न निरर्थकम्।
यदि विज्ञानमभ्येति, तदैव फलति ध्रुवम् ॥१॥

विद्यासिद्धकी विविध प्रकारसे सेवा कर उसे प्रसन्न किया जिस पर एक दिन उसने कहा कि–" तेरी क्या इच्छा है?" तिस पर ब्राह्मणने उसकी दरिद्र अवस्थाका वर्णन किया। जिसे सुन विद्यासिद्धने विचार किया कि :—

व्रतं सत्पुरुषाणां च, दीनदीनामुपक्रिया ।
तदस्योपकृतिं कृत्वा, करोमि सफलं जनुः ॥१॥

भावार्थः–दीन पुरुषों का उपकार करना ही सत्पुरुषों का व्रत है, इसलिये इस ब्राह्मण का उपकार कर मैं मेरा जन्म सफल करूं।"

ऐसा विचार कर उस सिद्धने ब्राह्मण से कहा कि "विद्यासे सिद्ध किया हुआ कुंभ दूँ या विद्या दूँ?" सुन विद्या साधनमें वे डरपोक और कामभोग प्राप्त करने उत्सुक उस ब्राह्मणने कहा कि–" विद्यासे सिद्ध किया हुआ कुंभ ही दीजीये।" इस पर सिद्धने उसे कामकुम्भ दे दीया। उसे ले दरिद्री शीघ्रता से उसके गांव गया। कुंभके प्रभावसे घर आदि अपने मनकी इच्छानुसार सब वस्तुए बना कर बांधवादि कुटुम्ब सहित स्वच्छंदपनसे भोग भोगने लगा। उसके बांधव कोई खेतका कार्य करते थे, कोई पशु चराने का कार्य करते थे और कोई व्योपार करते थे। वे सब अपने अपने धन्धे छोड कर मदांध हो भोग भोगने लगे। एक बार सुरापान कर वह ब्राह्मण अपने स्कन्धे पर कुंभ रख नृत्य करने लगा। उद्धताई के कारण उसके हाथ से वह घड़ा

गिर पड़ा, और पृथ्वीसे टकराने से कुम्भके सैंकडों टुकडे हो गये। उसके साथ ही साथ उस निर्भागी के मनोरथ भी भग्न हो गये। अर्थात् कुंभके प्रभावसे उत्पन्न हुए उसके घर आदि सब वैभव इन्द्रजालसे बने नगर के सदृश तत्काल अदृश्य हो गये। उसके पास विद्या न होने से उसमें नवीन कुंभ बनाने की शक्ति भी न रही जिससे वह नया कुंभ न बना सका और सदैव दरिद्रपन से ही व्याकुल रहा।

हे शिष्य! इस दृष्टान्त का यह सार है कि–" ज्ञान रहित सब क्रियायें निष्फल हैं जैसे उस ब्राह्मणने प्रमादवश विद्याग्रहण नहीं की, जिससे वह मंदबुद्धि इस लोकमें दुखित हुआ, वैसे ही अन्य पुरुष भी यदि ज्ञान सहित अनेकों क्रियायें करें तो भी वे सब अशुद्ध ही हैं।"

[इत्यब्ददिनपरितोपदेश प्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबंध ॥ २३५॥]

दूसरोंकी देवियों का उपभोग करते हैं, अपितु खुद ही इच्छानुसार देव देवीके रुपविंकुर्वी उनके साथ भोग भोगते हैं इसलिये मैं वैसा ही होउं। इसप्रकार जो नियाणा करे वह पांचवा परप्रविचार नियाणा कहलाता है। (५)

जो देव दूसरी देवीयों के साथ भोग करते हैं वो भी दुःख का ही कारण है परंतु जो अपने रूपको ही देव देवीरुप वनाकर भोग भोगते हैं वे ठीक है इसलिए मैं वैसा वनु। ऐसा जो विचार करता है उसे स्वप्रविचार नामक छठ्ठा नियाणा समझना चाहिये, ॥६॥

देव और मनुष्यके काम भोगसे विरक्त होकर यदि कोई ऐसा विचार करे कि:—" मैं विपय रहित अल्प विकार वाला देव वनुं तो वह देश विरति प्राप्त नहीं कर शकता है (७)

काम भोगसे उद्वेगीत होकर यदि कोई ऐसा विचार करे कि "द्रव्यवान् पुरुपको तो राजा, चोर, अग्नि आदि से महाभय होता है, इसलिये मैं अल्प आरंभ वाले दरिद्र के कुलमें उत्पन्न होउं, तो अधिक उत्तम है। इसे आठवां नियाणा कहते हैं (८)

अपितु यदि कोइ ऐसी धारणा करे कि, "मैं मुनि को प्रीति सहित दान देनेवाला और वारह व्रत धारी श्रावक वनु।" तो इसे नवमा नियाणा समझना। ऐसे विचार वाला देशविरति प्राप्त करसकता है. परन्तु सर्व विरति प्राप्त नहीं कर सकता (९)

इस प्रकार नव नियाणा का स्वरूप जान कर कई नमि राजर्षि जैसे उत्तम पुरुष, इंद्रादिक या देवादिकके अनेक प्रकारके सुखों से लुब्ध हुए भी नियाणा नही करते। श्री महावीर स्वामीने संगम देवता द्वारा किये अनुकुल उपसर्ग पर भी नियाणा नहीं किया, और नंदिषेन मुनिने नियाणा किया जिससे उसने वसुदेवका जन्म लिया और अनेक स्त्रियोंके स्वामी बने। अपितु कोई जीव समकित रहित हो तिसपर भी तामलि तपस्वीके समान नियाणा नहीं करते। उस तामलि तपस्वीका वृत्तान्त इसप्रकार है कि:—
ताम्रलिप्ती नामक नगरीमें तामलि नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसे एक दिन रात्रि जागरण करते लौकिक वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने विचार किया कि—"मैं पूर्व जन्मके पुण्यसे इस भवमें पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, राज्य-सत्कार आदि अनेक सुख भोगता हूँ। जन्मसे आरंभ कर आज पर्यन्त किसी भी समय एक श्वासोच्छ्वास भी मैंने दुःख से नही लिया, इसलिये अब प्रातःकाल स्वजनोंको भोजन आदिसे संतुष्ट कर, ज्येष्ठ पुत्रको गृहकार्यका भार सौंप, सब की आज्ञा ले, काष्ट पात्र हाथ में ले, तापसी दीक्षा ग्रहण करुंगा। फिर हाथ ऊँचे कर सूर्य की ओर दृष्टि रख खड़ा रहूँगा, और यावत् जीव छठका तप करुंगा। पारणे के दिन उस काष्टपात्र को ले ताम्रलिप्ती नगरीमें ऊँच नीच और मध्यम सर्व कुलमें भिक्षाके लिए भ्रमण करुंगा। दाल तथा शाक रहित मात्र भात जैसे हविष्यान्न को ले उस

ही मूढ समझना चाहिये क्योंकि वह वस्तु तत्त्व को नहीं पहचान सकता।"

इस विषय में निम्नस्थ दृष्टान्त है:—

किसी ग्राम में एक विधवा स्त्री दुःख से दिन निर्गमन करती थी। उसको एक पुत्र था। वह जब युवावस्था को प्राप्तहुआ तो उसने उसकी माता से पूछा कि-"हे मा! मेरे पिता की क्या आजीविका थी?" उसने उत्तर दिया कि, "हे पुत्र! तेरे पिता राजा के नोकर थे!" पुत्रने कहाकि, "मैं भी राज्य सेवा करुं" माताने कहा कि, "हे पुत्र! राजसेवाअति दुष्कर है और उसमें अत्यन्त विनय की आवश्यकता है!" पुत्रने पूछा कि-"विनय कैसे कीया जाता है?" माता ने कहा कि, "जिस किसीको देखो उसे नमस्कार करना और नम्रवृत्ति से रहना!" यह सुन, "मैं उसीप्रकार करुंगा" ऐसा अंगीकार कर वह राजसेवा करने को चलदिया। मार्ग में हिरन जा रहेथे, उन्हें मारने के लिये वृक्ष के मूलमें छीप कर तथा धनुष पर तीर चढाकर बैंठे हुए पारधियों को जब उसने देखा तो उसने दुरसे ही उंचा स्वर से उन्हें प्रणाम किया, वह शब्द सुन मृग भयभीत हो भग गये जिसपर पारधियोंने उसे पीट कर बांधदिया। तब उसने कहा कि-"मेरी माने मुझे सिखाया था कि जिनको तू देखे उनको नमस्कार करना!" यह सुन उन्होने यह जानाकि "यह भोला पुरुष है" उसे छोड दिया और शिक्षा दी कि—"यदि इसप्रकार कोई छिपकर बैठे हों तो धीरे धीरे मौन रखकर

उस ओर जाना।" ऐसा करना स्वीकारकर वह आगे चल दिया। आगे जाने पर उसने धोबियों को कपडे धोते देखा उनके वस्त्र सदैव चोर लोग चोरकर लेजाते थे इसलिये उस दिन वे धोबी चोर का पता लगाने के लिये हाथ में लकडिये ले छीपकर बैठे थे। उनको छिपकर बैठे देख वह कुछ नहीं बोला और छीपता छीपता शरीर को निचे झुकाकर धीरे धीरे आगे बढ़ा। इसप्रकार चोर के समान उसको आता देख "यह ही चोर है" ऐसा समझ उन्होने उसे पीटकर बांध दिया, और फिर सत्य बात कहने पर ही छोडा उन्होनें उसे शिक्षा दी कि-"इस प्रकार यदि किसीजगह देखे तो कहना कि, इस स्थान पर ऊस खार पडे तो अच्छा हो।" इस वाक्य को भी अंगीकार कर जब वह और आगे बढा तो किसी गांव मे उस दिन प्रथम हल चलाने का मुहूर्त था। जिसकी अत्यन्त मंगलपूर्वक क्रिया हो रही थी। वहां जाकर उसने कहा कि, "यहां खार पडे तो अच्छा हो!" इस से वह वहां भी पिटा गया व बांधदिया गया। फिर सत्य बात कहने पर छोडा गया और समझाया गया कि, "ऐसा देखने पर यह कहना कि-यहां गाडे भरे, बहुत हो, हमेशा ऐसा ही हो।" यह बात भी उसने स्वीकार की। फिर किसी जगह कोई मुर्दे को गांव के बाहर लेजा रहे थे। उस समय उसने ऊपर माफीक कहा जिससे वहां भी ऊसको बांधलिया गया। फिर सत्यबात कहने पर ऊसे छोडकर शिक्षादी कि-"ऐसा जहां देखे वहां इस प्रकार कहना कि-किसी भी

यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं तत्र त्रीणि निवारयेत्
विवादमर्थसंबन्धं परोक्षे दारभाषणम्

भावार्थः—"यदि प्रीति बढ़ाना होतो मित्र के साथ वादविवाद, द्रव्य का सम्बन्ध और परोक्ष में उसकी स्त्री के साथ वातचित इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।"

अत : लोग हमारी प्रीति का नाश करा देंगे। यह सुन ग्वालने कहा कि, "मैं कडे की परीक्षा करा लूंगा जब मेरा चित्त स्थिर होगा तो लोग क्या करेगें ?" फिर सोनी ने एक सुवर्ण का व एक पीत्तल का इस प्रकार दो एक समान कड़े बनाये। उनमें से उसने पहले उस ग्वाले को सोने का कड़ा दिया जिसे ले उसने उसकी दुसरोंसे परीक्षा कराई। परीक्षकने कहा कि—" यह कडा सोने का है औ इसकी इतनी कीमत है जिससे ग्वालको यकीन हो गया। फि उस सोनी ने उसे ओपने को मांगा जिसपर ग्वालने उ उसको वापस दे दिया सोनी ने पीतलका कड़ा ओप कर उ देदिया। मूढ ग्वाल यह फेरफार न जान सका और उ लेकर उसके घर में रखदिया। फिर काम पडने पर उस उसे एक शराफ को वतलाया उसे देख उन्होने कहा कि "यह तो पितलका है।" तिसपर ग्वालने कहा कि, "तुम जूठ कहते हो। पहले तो तुमनेही इसे सच्चे सोनेका वत-लाया था और अब खोटा वतलाते हो। इसलिये मेरे मित्र का इसमें कोई दोष नही हैं।" (४)

इस दृष्टान्त का यह तात्पर्य है कि–जैसे उस ग्वाल को पहले उलटा समझाया था जिससे वह योग्यायोग्य को न जानसका वैसे ही जिसे उल्टा अवला समझा कर कुमत ग्रहण करा दियाहो वह पुरुष भी सिद्धान्त के सत्य-तत्त्वको नही जान सकता है।

"इसप्रकार उपदेश देने में इन चार प्रकार के पुरुषों को अयोग्य बतलाये गये हैं इसलिये इनको छोड़कर अन्य को सिद्धान्त श्रवण कराना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबंध ॥ २३५॥]

व्याख्यान २३८

कदाग्रही के विषय में

स्याद्वादयुक्तितो बोधं, न प्राप्तवान् स निर्गुणः ।
विद्वन्मरालसंघेभ्यो, बाह्यः कार्यः शुभात्मभिः ॥ १ ॥

भावार्थः–" जो स्याद्वादको युक्ति से बोध प्राप्त न कर सके उसे निर्गुण समझना चाहिये । उसे समझदार पुरुषों को विद्वान्‌रूप हंस समूह से बाहर निकाल देना चाहिये।"
इस पर दृष्टान्त कहा जाता है कि, दसपुर नामक नगर में तोशली पुत्र आचार्य के शिष्य आर्यरक्षित सूरि थे। वे वज्र सूरि आचार्य के पास कुछ अधिक नव पूर्व पढे थे। उन्होने शिष्यों का अल्प वुद्धि जान अनुक्रम से भिन्न भिन्न अनुयोग मे आगम को स्थापन किये[१]। तथा सीमंधर स्वामी के वचनसे निगोद संबंधी प्रश्न करने को देवेन्द्र उनके पास आया और यथार्थ निगोद का स्वरुप सुन उसने उनको नमस्कार किया। वे सूरि एक वार विहार करते करते दशपुर नगर में आये। उस समय मथुरा नगरी में कोई नास्तिकवादी उत्पन्न हुआ उसका प्रतिवाद करनेवाला कोई न होने से सब संघने एकत्रित होकर विचार कियाकि "

१. कईमें द्रव्यानुयोग प्रधान रक्खा, कईमे गणितानुयोग प्रधानरक्खा कईमे धर्मकथानुयोग प्रधानरक्खा और कईमे चरणकरणानुयोग नही प्रधानता रक्खी, इसप्रकार चारो अनुयोगमें आगमको बांट दिया.

तेल घडे को चिपका रह जाता है और घीके घड़ेमे कुछ अधिक घी चिपका रह जाता है इसीप्रकार मैं सूत्र तथा उसके अर्थ के विषय में दुर्वलिका पुष्पमित्र के सामने रेत के घडेके समान हूँ क्योकि मेरेमें से समग्र सूत्रार्थ उसने ग्रहण करलिये हैं जबकि फल्गुरक्षित के सामने तेल के घडे के समान हूँ क्योंकि उसने सब सूत्रार्थ ग्रहण नहीं किये हैं और गोष्टामाहिल के सामने तो मैं घी के घडे के समान हूँ क्योंकि बहुत से सूत्रार्थ मेरे पास ही रह गये हैं इस-लिये दुर्वलिका पुष्पमित्र को ही तुम्हारा सूरि बनाना चाहिये।" यह सुन सर्व संघने "इच्छामः" (ऐसाही चाहते हैं) ऐसा कह स्वीकार किया। फिर सूरि साधु तथा श्रावक दोनों को योग्य अनुशासन (शिक्षा) दे, अनशन ग्रहण कर स्वर्ग सिधाये यह सब वृतान्त जब गोष्टामहिलने सुना तो वह मथुरा से वहां आया और पूछाकि,-"सूरिने उनके स्थान पर किसको स्थापन किया?" यह सुन सबने रेत आदि के घडे के दृष्टान्त सहित सब वृतान्त उसे कह सुनाया जिसे सुन वह अत्यन्त खेदित हुआ और अलग उपाश्रयमें रह सूरिकी निन्दा करने लगा तथा साधुओं को उल्टा समझाने लगा और कहा कि-"तुम रेतके घडे जैसे आचार्य के पास श्रुतका अभ्यास क्यों करते हो?"

एकदिन दुर्वलिका पुष्पमित्रसूरिके शिष्य विन्ध्यनामक मुनि कर्मप्रवाद नामक पूर्वकी आवृत्ति कर रहे थे जिसमें यह विषय चल रहा था कि-"जीव के प्रदेश के साथ बद्ध

हुआ कर्म जिसका बंधमात्र होता है अर्थात् कषाय रहित (केवली) मुनि को इर्यापथिकी सम्बंधीसे जो कर्म बांधते हैं उसे बद्ध कहते हैं। वे कर्म कालान्तर स्थिति को विना पाये हुए ही सूकी भींत पर डाले भूके की मुट्ठी के समान जीव के प्रदेश से अलग हो जाते हैं।

जीव के प्रदेशों द्वारा खुद का कियाहुआ कर्म बद्ध स्पष्ट कहलाता है। वह कर्म आर्द्र भींत परसे फेंके गीले के चूर्ण के समान कालान्तरमे नाश हो जाता है और अति दृढ अध्यवसाय से बांधा कर्म कि जो अपवर्तनादि कारण के अयोग्य होने से निकाचित कहलाता है वह कर्म अति दृढ़ बंधवाला होने से आर्द्र भींत पर आकरे (गहरे) कलई, चुना या सफेदा का हाथ फेरा हो उसके समान कालान्तरसे जो विपाक से भोगे विना प्रायः क्षय नही हो सकता है। इन तीनों प्रकार के कर्म के बंधनको समजने के लिए सुई के समूहका दृष्टान्त निम्नस्थ प्रकारसे है कि—दौरे से बांधे हुए सुई के समूह जैसा बद्ध कर्म को जानना चाहिये, लोहेकी पत्तिसे बांध सुई के समूह जैसे स्पष्ट बद्ध कर्म को जानना चाहिये और अग्नी से तप्त हथोड़े से पीटी जानेवाली टोपी से एकत्रित की हुई सुई के समूह जैसा बद्ध स्पृष्ट निकाचित कर्म को जानना चाहिये यहां पर यदि किसीको यह शंका हो कि—"निकाचित और अनिकाचित कर्म में क्या भेद है ?" तो उसके [illegible] में श्री

कम्मपयडी ग्रंथमें जो अपवर्तनादिक आठ करण क[हे]
गये हैं वे सब करण अनिकाचित कर्ममे ही प्रवृत्त होते
और निकाचित कर्म में तो उनका फल उदय होने
प्रायः कर भोगना ही पड़ता है । इतना निकाचित औ[र]
अनिकाचित में भेद है ।

यहां निकाचित कर्म के सम्बन्ध में "प्रायः
भोगना ही पडता है ।" ऐसे शब्द कहने का तात्पर्य
है कि-"तपसाओ निकाइयाणंपि (तप से निकाचित [illegible]
का क्षय होना भी संभव है, "इस वचनो के अनु[illegible]
अत्यन्त तप करने से तथा उत्कट अध्यवसाय के प्र[illegible]
निकाचित कर्म में भी अपवर्तनादिक कारणों का प्र[illegible]
होना है इस प्रकार व्याख्या करने का यह तात्पर्य है कि
क्षीर नीर के सदृश तथा अग्नि से तपे गोले के [illegible]
जीवप्रदेश के साथ कर्म का सम्बन्ध है ।" इस प्र[illegible]
विन्ध्यक मुनि की व्याख्या सुन उस कर्म के उदय के क[illegible]
कदाग्रह से उसको नहीं मानता हुआ गोष्ठामाहिल [illegible]
पास जाकर कहने लगा कि-" आपने जो जीव कर्म
तादात्म्य सम्बन्ध बतलाया है वह अनुचित है क्योंकि ताद[illegible]
भाव मानने से [illegible] जीव के प्रदेश भिन्न नहीं होंगे [illegible]
[illegible] कर्म भी जीव से अभिन्न होगा और [illegible]
[illegible] प्राप्त नहीं कर सकता । [illegible]
[illegible]
[illegible]

ही है। अग्निसे तपाये लोहके गोलेके न्यायके समान तादात्म्य भाव प्राप्त किये बिना ही वह जीव के साथ जुड़ (मिल) जाता है और उस के साथ परभव में जाता है। ऐसा माननेसे मोक्ष की प्राप्ति कायम रहेगी।"

इस प्रकारके वचनों से विन्ध्य मुनि को शंका हो जानेसे उन्होने आचार्य को जाकर पूछा तब उन्होंने कहा कि:-"तुमने जो पहेले कहा था वो हि सत्य है क्योंकि:-

जीवो हि स्वावगाहाभि व्याप्त एवांबरे स्थितम् ।
गृह्णाति कर्मदलिकं जातु न त्वन्यदेशगम् ॥१॥
अथात्मान्यप्रदेशस्थं कर्मादायानुवेष्टयेत् ।
यद्यात्मानं तदा तस्य घटते कंचुकोपमा ॥ २ ॥

भावार्थ:-"जीव अपनी अवगाहना से व्याप्त हुआ आकाश प्रदेशमें रहे कर्म-दलियो को ग्रहण करता है परन्तु अन्य प्रदेशमें रहेको ग्रहण नहीं करता, इससे यदि कदाच आत्मा अन्य प्रदेशमें रहे कर्म को ग्रहण कर अपने आप उसमें चिपक जाये तो उस कर्म पर सर्प कांचली की उपमा घटित हो सकती है, अन्यथा घटित नही हो सकती।"

इस प्रकार गुरू का वचन विन्ध्य मुनिने गोष्टामहिल को कहा परन्तु उसने जब उसे स्वीकार नहीं किया तो आचार्यने उसे बुलाकर पूछा कि-"तुम सर्प कंचुकी सदृश

देकर वापस आ।" वह मध्यरात्रिमें अकेला श्मशान में गया, जहां अनेकों भूत, प्रेत, पिशाच आदिने उसे भय दिखलाया परन्तु उसका एक रूआं (रोम) भी खड़ा नहीं हुआ, जिससे उसको शूरवीर जान राजाने उसका वेतन बढ़ा दिया। फिर एक दिन राजाने दक्षिण मथुराके राजाको जीतने के लिये हजार योद्धाओंका सैन्य भेजा और उत्तर मथुराके राजा को जीतने के लिये अकेले शिवभूति को भेजा। वह तुरन्त विजय प्राप्त वापस लौटा जिसे देख राजाने उसका नाम सहस्रमल्ल रक्खा और वरदान मांगने को कहा। उसने मांगा कि, "हे स्वामी! मुझे स्वतंत्रता दीजिये" इसलिये राजाने उसे स्वतंत्र कर दिया।

फिर वह राजा के प्रसाद से इच्छानुसार विलास करता हुआ नगरमे घूमने लगा, और रात्रिमे दो पहर रात्रि गये बाद घर आने लगा जिससे दुःखि होकर उसकी स्त्रीने उसकी माँसे कहा कि–"तुम्हारे पुत्र से में घबरा गई हूँ वे किसी भी दिन रात्रि को समय पर घर नही लौटते इसलिये जागरण व भूख से में दुःखी होती हूँ।" यह सुन कर सासुने कहा कि–"हे वहू! आज तू सोजा मैं जगती रहूँगी" ऐसा कहने से वहू सो गई। मध्यरात्रि में सहस्र मल्लने आकर कहा कि–"दरवाजा खोलो" यह सुन माताने कुपित होकर जवाब दिया कि–"हे दुष्ट! इस मध्यरात्रि के समय जहां दरवाजे खुले हो वहीं जा।" इस प्रकार सुनने से क्रोधित हो वह गांवमें फिरने लगा कि उसने खुले दरवाजे

ग्रहण नहीं करना चाहिये ।" यदि ऐसी तेरी धारणा हो तो यह भी अयुक्त है क्यों कि, "हे देवानुप्रिय ! तेरी इस युक्ति के अनुसार तो देहादिक में भी रौद्रध्यानकी प्राप्ति होगी । क्योंकि शरीरकी भी जल, अग्नि, चोर, डांस, शिकारी पशु, विष, कंटक आदि से रक्षण करनेकी आवश्यकता होती है !" इसलिये देहादिक में भी संरक्षणानुबंधिकी तुल्यता है अतः उन देहादिकका भी त्याग करना पड़ेगा ।

कदाच तू ऐसा कहे कि-"देहादिक मोक्ष साधन में अंगीभूत होने से यत्नपूर्वक उनके संरक्षण में कोई दोष नहीं है । परन्तु वह प्रशस्त संरक्षण है ।" तो यहां भी आगममें वर्णित यत्नके प्रकार से ही वस्त्रादिक का त्याग क्यों नहीं है ? इसलिये वस्त्रादिकका त्याग क्यों करना चाहिये ? अपितु "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इति वुत्तं महेसिणा (भगवंतने मूर्छा को ही परिग्रह बतलाया है ऐसा महर्षि श्री सुधर्मास्वामी का कथन है ।" आदि श्री सय्यंभव सूरि के वचनानुसार वस्त्र, वित्त, देह आदि में मूर्छा उत्पन्न हो तो वह परिग्रह है ।

प्रश्न—यदि मुनि वस्त्र ग्रहण करे तो फिर साधु को अचेल परीषह सहन करने को क्यों कहा गया है ? क्योंकि वस्त्रके न होनेपर ही वह घटित हो सकता है ।

उत्तर—तेरा कहना अयोग्य है क्योंकि जीर्ण प्रायः वस्त्र से भी वस्त्ररहित होना लोकमें प्रसिद्ध है । जैसे कि

कोई स्त्री जीर्ण एवं फटा वस्त्र शरीर पर धारण कर कोरि
वस्त्रके बुनकर को कहती है कि–"हे बुनकर! मेरी साड़ी
शीघ्र बनाकर दे क्योंकि मैं नंगी फिरती हूं।" यहां वस्त्र
सहित होनेपर भी स्त्रीके लिये नग्नपन शब्द का प्रयोग किया
गया है। शास्त्रमें भी "जस्सट्ठा कीरइ नग्गभावो" ऐसा कहा
हैं वह उपचारिक नग्न भावके लिए ही है, अतः वस्त्र
रखने में किसी प्रकार का विरोध नही है, इसीप्रकार मुख
वस्त्रिका रजोहरण करने लायक है। कहा है कि—

स्थानोपवेशनस्वाप, निक्षेपग्रहणादिषु।
जंतुप्रमार्जनार्थं हि, रजोहरणमिष्यते ॥१॥

भावार्थ :–"किसी भी स्थान में बैठने, शयन करने, किसी वस्तु को रखने, लेने आदि कार्य में जन्तुओं के प्रमार्जन के लिए रजोहरण की आवश्यकता है।"

संपातिमादिसत्वानां, रक्षार्थं मुखवस्त्रिका।
भक्तपानस्थजंतूनां, परीक्षार्थं च पात्रकम् ॥२॥

भावार्थ :–"संपातिम[1] जन्तुओं की रक्षा के लिए मुख वस्त्रिका की आवश्यकता है, और भक्तपान में रहे जन्तुओं की रक्षा के लिए पात्रकी आवश्यकता है।"

परन्तु पात्र बिना यदि [illegible]

[1] [illegible]

उसमें रहे जीवकी तो हिंसा ही होती है तथा हाथमें लिये प्रवाही पदार्थ हाथमेसे निचे गीरे जिनसे कुंथुवा, कीड़ी आदि अनेकों जीवोंकी हिंसा होती है तथा गृहस्थ मुनिके काममें आये पात्रों धोइ, पूंछे तो उससे पश्चात्कर्मादि दोष लगते हैं, इसलिये वाल और ग्लानादि साधुओंकी वैयावच्च के लिए तथा पारिष्टापनिका समिति रखने के लिये साधुओं को पात्रका ग्रहण करना योग्य है। अपितु जघन्यसे भी नव पूर्वमें कुछ अल्प पढ़े, उत्तम धैर्य और संहननवाले "तवेण सुत्तेण सत्तेन (तप, सूत्र और सत्य द्वारा) आदि भावनाऐं कर प्रथम तुलना करने पश्चात् ही जिनकल्प अंगीकार कर सकते हैं परन्तु शेरीके सिंह समान तेरे जैसे के लिए तीर्थंकरोने जिनकल्पकी आज्ञा नहीं दी है तिसपरभी जो तु तीर्थंकरकी तुलना करता है वह अयोग्य है क्यों कि जिनेश्वर तो पाणिप्रतिग्रहादि अनन्त अतिशयों वाले होते हैं इसलिये तेरी मान्यता सर्वथा त्याज्य है।"

आदि अनेक युक्तियों से समझाने पर भी वह मिथ्या अभिनिवेश से श्री तीर्थंकर के तथा मुनीन्द्रों के अनेक वचनों का उत्थापक हुआ। अब शिवभूति के कोडिन्य और कोट वीर नामक दो बुद्धिशाली शिष्य थे। जिनसे इस मतकी परंपरा आरंभ हुई। फिर उन्होंने अनुक्रमसे "केवली आहार नहीं करते, स्त्रीका मोक्ष नही होता, तिविहार उपवास में सचित, जल पीनेमे कोई दोष नहीं, दिगंवर साधु देवद्रव्य लेकर उसका व्यय करे तो इसमें दोष नही।" आदि

आई हूं ।" तब वह हंसकर विस्मय पूर्वक बोली कि—"मेरा प्रिय कौन है ?" तब उस वेश्याने सब समाचार कह सुनाया । यह सुन राजपुत्रीने विचार किया कि—"सचमुच वह कोई अलौकिक पुरुष होना चाहिये, क्योंकि आजतक मेरा कोई प्रिय नहीं है परन्तु जिसने ऐसा कपट जाल रचा है उसे नजरसे देखना तो चाहिये ।" ऐसा विचार कर उसने वेश्याको कहा कि—"हे सखी ! मेरे प्रियका सन्देसा लानेवाले उस मनुष्योंको मेरे लिखे पत्र सहित आज इस बारी (खिड़की) के रास्तेसे यहां लाना ।" उस वेश्याने घर आकर सब वृत्तान्त मित्रानन्दसे कहा । फिर उस रात्रिको अक्का द्वारा बतलाये मार्गसे सात खिड़कियोंका उल्लंघन कर वह राजकन्याके निवास गृहमें पहुंचा । अक्काने उसकी पुत्रीके पास उसके धैर्यकी प्रशंसा की । इस ओर राजपुत्रीने उसका धैर्य, विवेक पत्रोंका लेखन, चातुर्य तथा उस रूप, लावण्य और वचन कलाका कौशल्य देख मानो स्तंभित हो गई हो इस प्रकार बिना एक भी अक्षर बोले वह स्थिर हो गई । उस समय मित्रानन्दने हिम्मत कर उसके हाथसे राजाका नामाङ्कित कड़ा निकाल लिया और उसकी जंघा पर छुरीसे त्रिशूलकी आकृति बनादी, फिर वहांसे निकल अक्काके घर चला गया राजकुमारी उसके गुणोंसे आसिक्त होकर विचार करने लगी कि—"सचमुच वह कोई सामान्य पुरुष नहीं था, इसलिये मैंने जो उससे संभाषण भी नहीं किया वह अच्छा नहीं किया है ।" आदि विचार करते करते वह पीछली रात्रिमें निद्रा-वश हो गई ।

प्रातःकाल मित्रानन्दने राजाके पास जाकर फरियादकी कि-" हे राजा ! अखंडित आज्ञा वाले आपके राज्यमें एक श्रेष्टि मेरा मांगता धन नही देता है । आप लोकपाल है इसलिये ऐसे दुष्टको सजा देना चाहिये ।" यह सुन राजाने उसके सिपाईयोंको भेज उस श्रेष्टीको बुलाया । उस श्रेष्टीने भी सब हाल जान लिया इसलिये उसने राजसभामें आते ही प्रथम मित्रानन्दको उसका अवशेष द्रव्य दे राजाको प्रणाम कर कहा कि-" पिताके पीछेके लोकाचारमें व्यस्थ होजानेसे तथा पिताके विरहके शोकसे धन देनेमें विलम्ब हो गया था ।" राजाने उसकी बात सत्य मान उसे जानेकी आज्ञा दी । फिर राजाने मित्रानन्दसे पूछाकि, " तूने रात्रिमें मृतककी रक्षा कैसे की ? " उसने उत्तर दिया कि, "हे राजा ! उस रात्रिमें भूत, वेताल, राक्षस, शाकिनी, व्यन्तर आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों सहित आये थे । उनके साथ रात्रिके तीन पहर तक मैने बहुत युद्ध किया अन्तमें गुरुके बताये मंत्रबलसे भग गये । फिर चोथे पहरमें कोई एक अपसरा जैसी स्त्री मेरे पास आई, वो दिव्यवस्त्र धारण किये हुई थी विविध प्रकार के आभूषणोंसे शोभित थी, केश खुले होनेसे भयंकर दिखाइ देती थी, मुंहसे अग्निज्वाला निकाल रहीथी और हाथमें कतींका लिये हुई थी । उस स्त्रीने मुझसे कहाकि, " हे दुष्ट! आज तुजको ही खाउंगी ।" मैने उसे देख विचार कियाकि-"लोग जो कहते थे सचमुच वह मारी यह ही है ।" इससे मैने उसके साथ भयंकर युद्ध किया और चमत्कारसे उसका हाथ

भयंकर युद्ध किया और चमत्कारसे उसका हाथ मरोड़ कर उसके हाथसे सुवर्ण कंकण निकाल लिया। अन्त जब वह भगने लगी तो मैंने उसकी दाहिनी जंघा पर छरी द्वारा शुलका चिन्ह बना दिया।" ईस प्रकार सुन कर राजा आश्चर्य चकित हो बोलाकि, "उस मारीके हाथसे निकाला हुआ कड़ा बतला।" मित्रानन्दने वह कड़ा बतला दीया इस पर राजा उसके नामांकित कड़ेको देख विचार करने लगा कि, "अहो! क्या मेरीही कन्या मारी है? क्योकि यह उसीका आभूपन है।" ऐसा सोच उसकी परीक्षाके लिये राजा शौचका बहाना बना महलमें गया। वहां जाकर देखा तो कन्या सोती हुईथी, उसके हाथमें कंकण नही था और जंघा पर बनाये चिन्ह पर साडीका पाटा बांधा हुआथा। उसे देख राजा वज्रसे मारे हुएके समान हो गया और कहने लगा कि, "अहो! इस पुत्रीने मेरे वंशको कलंकित कर दिया।" फिर राजाने सभामें जा गुप्तरूपसे मित्रानन्दको कहा कि, "हे पुत्र! मेरी पुत्रीही मरकी साबित होती है इसमें कोई सन्देह नही है अतः इसका भेद बतला।" उसने कहा कि, "हे राजा! आपके कुलमें ऐसा नहीं हो सकता! राजाने कहा कि–" नहीं, मैं सत्य करता हूं, इसलिये जब तक वह सर्व प्रजाको मार न डाले उसके पूर्व तू किसीभी प्रकारसे इसका उपाय कर।" मित्रानन्दने कहाकि, "प्रथम मुजे देखने दो कि यह मेरेसे साध्य है या नही?" राजाने कहा कि, "स्वेच्छासे जाकर देख।" इसलिये मित्रानन्द

राजकन्याके पास गया। उसने उसे पहचान लिया और उसे बैठनेके लिये आसन प्रदान किया। फिर मित्रानन्दने कहा कि, 'हे सुभ्रू! मैंने तुजे कलंकित किया है, इसलिये अब तुजे यहां रहना अनुचित है। परन्तु तू चिन्ता न कर तुझे मैं एक उत्तम स्थान पर ले चलूंगा।" यह सुन उसके गुणों पर मुग्ध हुई वह राजकन्या बोली कि, "ये मेरे प्राण भी आपको आधीन है।" कहा है कि:-

अंधो नरपतेश्चित्तं, व्याख्यानं महिला जलम्।
तत्रेतामहि गच्छंति, नीयंते यत्र शिष्य ते ॥१॥

भावार्थ:-"अंधा, राजाका चित्त, व्याख्यान (कथा), स्त्री और जल इनको जहां कहींभी लेजाया जाता है वहां ये चले जाते है!" अर्थात् अंधेको जितनी दूर और जिस ओर ले जाओ, उतनाही चलता है, राजाका चित्त, जिस ओर मोड़ो उस ओर वह जाता है, स्त्रीको जहां कहीं ले जाओ या भेजो वहीं चली जाती है और जल भी जिस ओर नीक कर दो उसी ओर वह निकलता है।"

मित्रानन्दने कहा कि, "राजाके समक्ष मैं जब तेरे पर सरसों के दाने फेकूं तब तू फूंकार करना।" यह बात रत्नमंजरीने स्वीकार करली। तब उसने राजासे जाकर कहा कि, "हे स्वामी! आपने जो कहा है वह सत्य है परन्तु एक सांढ तैयार कीजिये, आज रात्रिमें मंत्र बलसे मैं उसे सांढ पर बैठाकर आपके देश से बाहर ले जाऊंगा।

उस समय एकाएक चोरोंका हमला हो गया जिन्होंने तेरे सब सेवकोंका पराजित कर दिया और मित्रानन्द अकेला वहांसे भग गया । वह किसी वटवृक्षके निचे सोता था कि किसी सर्पने उसे डंस लिया । उसी समय कोई तपस्वी वहां आया जिसने उसका विष उतार दिया । वहांसे मित्रनन्द तेरे पास आ रहा था कि मार्गमें चोर लोगोने उसे पकड़ लिया और एक वनियेके वहां जाकर उसे बेंच दिया । उस वनियेने पारस कुलकी ओर जाते हुए रास्तेमें अवंती नगरीके बाग पड़ाव किया । रात्रिका समय देख तेरा मित्र बंधन तुड़ा कर भग गया । गांवकी खालके रास्तेसे जब वह गांवमें प्रवेश करना चाहता था कि राजाके सिपाहियोंने उसे देख लिया इस लिये उसे ज्ञात चोरके समान पकड़ बांध लिया । प्रातः काल होने पर राजाके हुकमसे उसे पूर्वोक्त वटवृक्ष परही मार डालनेके लिये बांध दिया गया । उस समय तेरा मित्र विचार करने लगा कि, अहो ! शवका कहा वाक्य सच हो गया । कहा है कि:—

यत्र वा तत्र वा यातु, यद्वा तद्वा करोत्यसौ ।
तथापि मुच्यते प्राणी, न पूर्वकृतकर्मणः ॥१॥

भावार्थ:—" प्राणी चाहे जहां जाये अथवा चाहे जो उपाय करे परन्तु वह पूर्व कृत कर्म से किसी भी प्रकारसे मुक्त नहीं हो सकता ।"

वहां मित्रानन्द मर गया फिर एक दिन जब ग्वाल वाल उस वडके पास खेल रहेथे उनकी गिल्ली उछल कर

वह चाकर जब एकबार तेरे क्षेत्रमे कार्य कर रहाथा उस समय उसने दूसरोंके क्षेत्रसे किसी यात्रीको धान्यकी वाले लेते देखा । उसे देख चनुसेनने कहा कि, "इस महान् चोरको ऊंचा बांधकर लटकादो ।" ऐसे शब्दोंसे उसने महा कठिन कर्म बांधा ! सत्यश्रीने भी किसी समय उसकी पुत्र वधूसे कहा कि, 'डाकण के समान जल्दी जल्दी क्या खाती है ? धीरे धीरे क्यों नहीं खाती ? कि जिससे कंठ न रुंधे ।" ऐसा कहनेसे उसने भी कर्म बांधा । एकबार क्षेमंकरने नोकरसे कहा कि, "आज एक गांव जाना है सो जा" तब चाकरने कहा कि, "आज मुजे अपने स्वजनोंसे मिलना है इसलिये में आज नही जा सकूगा ।" क्षेमंकरने क्रोध पूर्वक कहा कि, "चाहे तेरे स्वजन न मीलेतो कुछ परवा नही परन्तु तुजे तो जाना ही होगा ।" इतने में कोई दो मुनि गोचरीके लिए पधारे । उन्हें देख क्षेमंकरने उसकी स्त्रीसे कहा कि-"इन महर्षिओंको बडे हर्षके साथ प्रासुक और एषणीय अन्न वहराओ ।" उस समय उस चाकरने मनमें विचार किया कि, "इन दम्पत्तिको धन्य है कि जो अत्यन्त भक्तिपूर्वक मुनिको दान देते हैं "उसी समय उन तीनों पर अकस्मात् बिजली गिरनेसे वे तीनो एक ही साथ मर गये । उनमेसे क्षेमंकर का जीव तो अमरदत्त हुआ, सत्यश्री का जीव तेरी पट्टरानी हुई और तेरा चाकर चनुसेन यह मित्रानन्द हुआ उस चाकरने जिस यात्रीको वाल लेते देख बांधनेको कहा था वह ही मर कर उक्त वटवृक्ष पर व्यंतर हुआ । उसने मित्रानन्दको देखकर उसके पूर्व जन्मका वेर याद आने से वह शब द्वारा वोला था ।

इस प्रकार गुरुके वचन सुन राजा तथा रानीको जातिस्मरण ज्ञान हो आया वे गुरुके वचनोंको प्रमाणित मान घर लौट आये । उनके एक पुत्र हुआ जब वह युवा हुआ तब उसे राज्य सौंप उस दम्पत्तिने दीक्षा ग्रहणकी और अन्त में मोक्ष गये ।

इस दृष्टान्तका यह तात्पर्य है कि–अल्प मात्रभी क्रोध महान् दुःखका कारण होता है इसलिये मुमुक्षुको उसका त्याग कर देना चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २४१ ॥]

व्याख्यान २४२

मानत्यागान्महौजस्वी, तत्वज्ञानी सुदक्षताम्
दधन् दधौ महज्ज्ञानं, बाहुबलिमुनीश्वरः ॥ १॥

भावार्थः– " बडे पराक्रमी, तत्वज्ञानी, अतिदक्ष बाहुबाली मुनीश्वरने मान त्यागसे केवल ज्ञान प्राप्त किया ।

श्री बाहुबलीका दृष्टान्त

श्री ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्री साठ हजार वर्षमे छ खंड पृथ्वीको जीतकर अयोध्या नगरीमें आये । वहां बारह वर्ष तक राज्याभिषेक होते समय कौन कौन राजा आयें हैं और कौन कौन नहीं आये इसका अवलोकन करते हुए चक्रीने उसके छोटे भाइयोंको न आया जान उनको बुलाने के लिये प्रत्येकके पास उनके दूत भेजे । दूतोंने उनको जाकर कहा कि, " हे भरत राजाके भाइयों ! तुम सब भरत राजाके पास आ उसकी सेवा करो ।,, उन्होंने कहाकि " जैसे भरत ऋषभदेवके पुत्र हैं वैसे ही हमभी ऋषभदेवके पुत्र हैं तो फिर क्या वे हमसे अधिक हैं कि जिससे हमारी सेवा चाहता है ? हे दूतों ! तुम तुम्हारे स्थान जाओ । हम पिताको पुछकर जैसा योग्य होगा करेंगें । ऐसा कह कर वे भाई [1]सुवर्णगिरिपर जिनेश्वरके पास गये और कहा कि " हे

---

१ मेरु न होकर कोई पर्वत विशेष हैं

कर उसे आकाशमें उछालदिया था क्या वह भी वह भूल
है ? हे दूत ! क्या साठ हजार वर्ष तक देश प्राप्त करने
पाप कर्मके संचय करनेवाले तेरे पूज्यको मेरे अति
अन्य कोई प्रायश्चित देनेवाला नही मिला ? अतः तेरे राजा
उसके बलकी परीक्षा करनेके लिए यहां जल्दी ले आ।
यह सुन सुवेग भयसहित वापस लौट अल्प कालमे ही अ
नगरको चला आया और बाहुबलीका सब वृतान्त भ
महाराज से कह सुनाया। उसने कहा कि, "बाहुबली
इन्द्र भी जीतनेमें समर्थ नही है। यह सुन भरत रा
उसके सवाकरोड़ पुत्र और सैन्य सहित तक्षसिला नगरी
ओर चल पड़ा। बाहुबली भी उनके पुत्रों तथा सेना स
सामने आये। उसका जेष्ठ पुत्र सोमयशा अकेलाही ती
लाख हाथी, घोड़े और रथोंको जीतने वाला था। उनके ती
लाख पुत्र थे। उनमेंसे सबसे छोटा पुत्रभी अकेला
अक्षौहिणी सेना जीतनेमें समर्थ था।

चक्रीके सैन्यमे चोराशी लाख डंके, अठारह लाख दुंदु
और सोलह लाख सैन्य वाजिंत्र थे। उन सबका
साथ नाद होने लगा। उसे सुन दोनों पक्षके
वीर परस्पर युद्ध करने लगे निरन्तर युद्ध चलने पर
अनिलवेग नामक विद्याधरने, कि जो बाहुबलीका

१. अक्षौहिणी सेनामें २१८७० हाथी, [illegible], [illegible] घोड़े और १०८३५० पैदल होते हैं। अन्य प्रमाणमें भी इसका प्रमाण [illegible] कहा है।

क्रीके सेनापतिको अस्त्र विद्या द्वारा जीत कर आकाश
ार्गसे चक्रीकी हस्ति सेनामें प्रवेश किया और गेंदके समान
ाथियोंको आकाशमें उछालकर उनकों पृथ्वी पर गिरते समय
ष्टिसे मारने लगा उसको अन्य किसीभी प्रकारसे पराजित
ोता न जान चक्रीने उस पर चक्ररत्न चलाया। चक्रको
खते ही वह भयके मारे भाग छूटा। फिर वह मेरुपर्वतकी
ुफाओंमे, या समुद्र आदिमें जहां जहां गया वहां वहां
र्व जन्ममें किये कर्मके सदृश चक्र रत्न उसके पीछे पीछे
ाया। अन्त उसकी रक्षाके लिए उसने विद्याके जोरसे
ज्रका पींजरा बनाया और उसने उसमें प्रवेश किया। उस
ामय चक्र रत्नके अधिष्टीयक देवोंने उससे कहा कि, "अरे!
रे पराक्रमको व्यर्थ क्यों लज्जित करता है?" वज्र पींजरे
ं रहते उसे छ महीने व्यतीत हो गये। छ माहिके बाद
ाभिमानवश वह बाहर निकला कि चक्ररत्न उसका मस्तक
ाट वापस चक्रीके हाथ मे लौट गया।

इस प्रकार युद्ध करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।
एक दिन चक्रीका जेष्ट पुत्र सूर्ययशा बाहुबलीकी सेनामें
दावानलके समान फैला और अल्पकालमे ही काकाके पास
ा पहुंचा। उसे देख बाहुबली ने कहा कि, "हे वत्स!
ुने छोटे होते हुए भी मेरी सेनामें प्रवेश किया जिससे
ुजे बड़ा आनन्द होता हैं तेरे जैसे पराक्रमी पुत्रसे हमारा
ंश उद्योत होता है परन्तु तीनों लोकोंमे भी मेरे क्रोधको
सहन करनेको कोईभी शक्तिवाला नही है इसलिये तू मेरी

आरे वाला और विविध प्रकारकी मणि तथा रत्न जड़ित धर्म चक्र और उसी नामका प्रासाद देखा । उसमे प्रतिष्ठित प्रभुको नमस्कार कर चक्रीने सोमयशासे उस प्रासादका वृतान्त पूछा । सोमयशाने कहा कि, "पूर्वमें ऋषभदेव पिता विहार करते करते यहां पधारे थे । जिसे सुन आपके लघुबंधु बाहुबलीने विचार किया कि, "अभी रात्रीका समय है इसलिये प्रातःकालमें वडे उत्सवके साथ पिताश्री की वन्दना करूंगा ।" ऐसा निश्चय कर सब सामग्री सज्जा कर प्रातःकाल होनेपर बड़ी धामधूम से उद्यानमें आया परन्तु जब वहां प्रभु दीखाई नहि पडेतो वहीं बहुत रुदन करने लगा और "धर्म कार्यमे विलंब करनेवाले मुजको धिक्कार है ! अब मुजे पिताके दर्शन कब होगें ?" आदि विलाप करने लगा । प्रधानोंने अनेक प्रकारसे उसे समझा कर शान्त किया । फिर वालुका (रेती) मे प्रतिबिंबित हुए भगवानके पादको नमन कर पिताकी भक्तिसे प्रधानोंसे कहा कि, "इन पिताश्रीके पूज्य पगलाको कोई स्पर्श न करें ।" ऐसा कह आठ योजन विस्तार वाला यह धर्मचक्र नामक प्रासाद बनाया ।" ऐसा सुन चक्रीने उसकी स्तुति की । फिर तक्षशिलामें प्रवेश कर बाहुबलीकी गद्दीपर सोमयशाको बैठाया । उस सोमयशाके चोईस हजार रानियां थी और श्रेयांश आदि बहत्तर हजार पुत्र थे । फिर भरत राजाने छ खण्ड पृथ्वी पर उसकी अखंड आज्ञाको प्रवृत कर अयोध्या की ओर प्रयाण किया ।

प्रवेश कर धर्मलाभ दिया । जिस पर उन कन्याओंने फिर एक दूसरा मोदक वहराया । इस ले वाहर पोलके दरवाजे तक जा उन्होने फिर विचारा कि—" यह दूसरा मोदक मेरे धर्माचार्यको देना होगा " ऐसा विचार कर काणी आंख वाले अतिवृद्ध साधुका रूप धारण कर वहां जाकर तीसरा मोदक लिया । अपितु फिर वाहर आकर " यह तो उपाध्यायको देना होगा " ऐसा मान कुवडेका रुप धारण कर चोथा मोदक लिया । यह भी " संघाडाका साधुका देना होगा " ऐसा सोच कोढियेके रूपसे पांचवा लड्डु लिया ।" यहभी वड़े गुरू भाईको भेंट करना होगा " ऐसा विचार अपने लिये वार वर्षके वाल साधुका रुप वना छट्ठा लाड्डु लिया ईस प्रकार अपना मनोरथ सिद्ध करके गुरू समीप पहुंचे ।

इस साधुका यह सब चरित्र खिडकीमे वैठे नटने देख लिया इसलिये उसने सोचा कि– " अहो ! यह वडा अच्छा नट वन सकता है ।" फिर उसने उसकी स्त्री तथा दोनों कन्याओंसे कहा कि, " इस साधुको खाने पिनेको अच्छा देकर इसे लोभित कर देना क्यों कि यह हमारे लिये सुवर्ण पुरुष है । यह अनेक रीतिसे रूप परावर्तनकी लब्धिको जानता है इसलिये यह सदैव अपने घर आता रहे इस प्रकार उसकी सेवा करना । वह रस–लोभी है अतः शीघ्र फस जायगा । मायावीको माया ही वताना चाहिये ।" फिर दूसरे दिनभी अषाढ भूति साधु वहां वहोरने आया तव उन्होने उसे वहुतसे मोदक देकर कहा कि, " हे पूज्य !

मात्र विरतिका रक्षण करनेसे यह देश विरति रहेगा, और इससे ईसकर पुनः उद्धार होना संभव है।"

फिर वे अपाढभूति चारित्रका त्याग कर, चरित्रके रसिक हो नटके घर आये और उनके घरमें सब आदमियों से कहा कि, "यदि तुम सब मद्य मांसका सर्वथा त्याग करो तो मैं तुम्हारे यहां रह सकता हूँ अन्यथा नहीं।" नटने उनका वाक्य अंगीकार कर उसकी दोनों कन्यायें उन्हें विवाह दी जिनके साथ वह सुख विलास भोगने लगा। फिर राजाके पास जो जो नट आते उनको अपनी कलासे जीतकर अनेक धन, वस्त्र आदि प्राप्त कर उसने उसके स्वसुर गृहको परिपूर्ण कर दिया जिससे समग्र नट कुलमें उसकी ख्याति बढने लगी।

इस प्रकार निरंतर सुखमें मग्न रहते हुए उसने बारह वर्ष निर्गमन किये कि कोई एक नट अपाढ नटकी अनेक प्रकारकी प्रशंसा सुन उसके सहन न होनेसे उसको जीतने के लिये राजसभामें आया! उसने बादमें अनेक नटोंको जीताथा और उनकी गिनतीके लिये उसने चोरासी सुवर्णके पुतले उसके पैरमें बांध रक्खे थे। उसने राजासे कहा कि "तुम्हारे राज नटको बुलाओ उससे मैं अपनी कला दिखला कर जीतुंगा।" राजाके बुलाने पर अपाढ नट राज सभामें

---

१. स्त्री चरित्रमें रसिक

आया और उसने परदेशी नटके साथ शर्तकी कि, "हमारे-मेसे जो पराजीत हो वह अपना सर्वस्व छोड़ कर चला जाये।" इस प्रकार दोनोंने सबके समक्ष स्वीकार किया फिर अपाढने अपने घर जा स्वजनोंसे कहा कि, "मैं उस नटको जीतनेके लिए जाता हूँ " तब उसकी दोनों प्रियाओंने कहा कि, "कार्य सिद्ध कर शीघ्र आना।" फिर वह सब सामग्री ले राजसभामें गया। उसके जाने बाद उसकी स्त्रियोंने विचार किया कि, "अहो! मद्यमांस खाये बिना हमने बहुत दिन बिताये इसलिये आज तो अब इच्छा पूर्वक खा लेना चाहिये। हमारे पतितों नटके साथ वाद करने गये हैं इससे वे तो छ महिनेमे आयेगें।" ऐसा विचार उन्होने खूब मद्यपान किया कि उससे वे उन्मत्त हो गई। इधर राज सभामे परदेशी नटने प्रथम अपनी कला बतलाई कि अपाढने लीलामात्रमें अनेकों कला बतला उसे तत्काल जीत लिया जिससे वह नट अहंकार रहित हो पुतला आदि अपने सब लक्ष्मी छोड़कर भारे लज्जासे भग गया।

अपाढ नट शीघ्र उसके घर लौटा। वहां आकर क्या देखता है कि उसकी दोनों स्त्रियें मदोन्मत्त होकर पड़ी हुई है, उनके मुखसे दुर्गंध निकल रही हैं, मक्खियें उनके मुंह पर गिनगिना रही है तथा समस्त शरीर मक्खियें-योंसे व्याप्त हो रहा है। उन्हे देख अपाढ़ने विचार किया कि; "मुजे धिक्कार है कि मै ऐसी मायावी और अनेक-मक्खियोंने जिनके मुंखको चुम्बन किया है उन स्त्रियें पर

क्षण भरमें अपने स्थान पर आकर सो रही । ईस प्रकार बहुतसा समय व्यतीत हो गया । उक्त चाकर सुवर्ण ले आया था इससे शेठके घरका काम काज करने में आना कानि करने लगा । और यदि श्रेष्टि उनसे कुछ कहता तो सामने जवाब देने लगता इससे धूर्तशिरोमणि श्रेष्टीने विचारा कि, "विना द्रव्यवान हुए ऐसे नहीं बोल सकता इससे जान पड़ता है कि इसने मेरे घरसे कुछ चुरा लिया है ।" ऐसा निश्चय कर एक दिन उसे एकान्त मे बुलाकर श्रेष्टीने युक्ति पूर्वक इस प्रकार पूछा कि उसने पेट के अजीर्णके समान सब वृतान्त कह सुनाया । शेठने कहा कि, "आज मुजे जाना है तू किसीको कोई बात मत कहना ।" चाकरको एसा कह कर रात्रिके समय श्रेष्टी उस काष्टकी पोलमे घुस गया । पहलेकी तरह काष्ट सुवर्ण द्वीपमे गया और बहुएं उतर कर घूमने गई कि श्रेष्टी भी बाहर निकला । वहां जब उसने सब पृथ्वी सुवर्णमय देखी तो लोभवश उसने जितना सुवर्ण इस काष्टमे समा सका उतना उसमे भर दिया और खुदने भी अंकमे आ सके उतना सुवर्ण रख कर उसकी पोलमे सिकुड़ कर बैठ रहा । गमन होने पर चारों बहुएं आई और सदैवकी तरह दो बहुए ऊपर बैठी और दो बहुए काष्ठ उठाने लगी तो उनको उसमे बहुत भार जान पड़ा परन्तु फिर भी वे चल दी और जब समुद्रके मध्य भागमे आई तो वे बहुएं थक गई तो उन्होंने कहा कि इस लकड़ेमें तो बहुत भार लगता है इसलिये इसे

समुद्रमे ही छोडकर यह दूसरा पानी पर तैरता हुआ जो लकड़ा है उसे ले ले।" यह सुनकर पोलमे बैठे श्रेष्ठी बोला कि, "हे वहुओं! मैं अन्दर बैठा हूँ इसलिये इस लकडे को न छोड़ो।" यह सुनकर वहुऐं बोली कि, "तुम्हारे चोवीस करोड़ द्रव्य के स्वामी होते हुए भी क्या कमी थी कि यहां आये? ऐसा कह औषध विना व्याधि जाती है ऐसा सोच कर उन्होंने लकड सहित सागर शेठको समुद्रमें फैंक दिया और दूसरे लकड़ पर बैठकर वे अपने घर लौटी। समुद्रमें पड़ा सागर श्रेष्ठी दोनों प्रकारसे नीचे गया। अर्थात् आकाशमेसे निचे गया और मरकर नरकमें गया। कहा है कि:-

लोभाभिभूतान् प्रभवंति जीवान्,
दुःखान्यसंख्यानि पदे पदेऽपि।
तृष्णा हि कृष्णाहिवधूरिवोग्रा,
निहंति चैतन्यमशेषमाशु ॥१॥

भावार्थः-"लोभ से पराभव पाये प्राणीको पद पद पर असंख्य दुःख प्राप्त होते हैं और काली नागण सदृश तृष्णा सर्व प्रकारके चैतन्यका शीघ्र नाश करती है।"

वामदेवेन मित्रेण, रूपदेवो वनांतरे।
घोरनिद्रावशीभूतो, लक्षलोभेन मारितः ॥२॥

भावार्थः-"वनमे घोर निद्रामें वशीभूत हुए रूपदेवको उसके मित्र वामदेवने एक लाख द्रव्यके लोभसे मारडाला।"

लोभश्चेदतिपापकर्मजनको यद्यस्ति किं पातकैः ।
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थैन किम् ॥
सौजन्यं यदि किं निजैश्च महिमा यद्यस्ति किं मंडनैः ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥१॥

भावार्थः–"अत्यन्त पाप कर्म को उत्पन्न करने वाला यदि पापका बाप लोभ होतो फिर अन्य पापसे क्या ? यदि सत्य हो तो फिर तप की क्या आवश्यका है ? यदि मन पवित्र हो तो फिर तीर्थ करनेकी क्या जरूरत है ? यदि सुजनता हो तो फिर आप्त पुरूषो से क्या काम है ? यदि महिमा हो तो फिर अलंकार पहनने की क्या जरूरत है ? यदि उत्तम विद्या होतो फिर धनकी क्या आवश्यकता है ? और यदि अपयश हो तो फिर मृत्युसे भी क्या अधिक है अर्थात् अपयश ही मृत्यु है (ऐसा सर्वत्र जाने) ऐसा विचार कर वह ब्राह्मण अपने घर आ उसकी स्त्रीसे कहने लगा कि, "हे प्रिया ! जन साधुने मुजे भली भाति प्रतिबोधित किया । जैन धर्म सब धर्मोमे उत्तम और लोकोत्तर है मात्र एक लोभको न जीतने से सर्व धर्मकृत्य व्यर्थ हैं लोभी पुरूष सब प्रकार के पाप कर्म करता है ।" फिर वह ब्राह्मण फिरसे गुरूके पास गया और गुरूसे कहा कि, हे स्वामी ! आपकी कृपासे मुजे ज्ञान, दर्शन और .चारित्र .रुपी तीन

ऐसा जान क्षुधासे पीडित होने पर भी उस मुनिने उन्हें ग्रहण नही किये और अपने नियमसे चलायमान नहीं हुए। आगे जाते दो मार्ग आये जिनमेसे एक मार्ग पर तीक्ष्ण कांटे विकुर्वे और दूसरे मार्गमें सूक्ष्म मेढ़क उत्पन्न किये। तीसरा मार्ग न होनेसे वे राजर्षि ईर्यासमितिका पालन करनेको कांटोवाले मार्गसे चाल दिये। कांटे लगनेसे पैरसे रुधिर धारा प्रवाहीत होने लगी फिर भी उन्होंने उस मार्ग परित्याग नहीं किया। उसके पश्चात् देवोंने अनेक स्त्रियोंके रूप विकुर्वी गीत, नृत्यादि करने लगे तिस पर भी उनका मन क्षोभित नहीं हुआ। अन्तमें नैमित्तिकका रूप धारण कर उन्होंने उनसे कहा कि, "हे मुनि! हम त्रिकालज्ञानी है इससे हम जानते हैं कि—अभी तुम्हारा आयुष्य बहुत है इसलिये युवावस्थाके फलरूप भोगविलासको भोग कर फिर वृद्धावस्थामें तप करना।" तब मुनिने कहा कि, "यदि आयुष्य अधिक होगा तो अधिक समय तक चारित्र पाला जायगा। विषय भोग तो पूर्वमें अनन्त बार भोग चुका हूं परन्तु उससे कोई तृप्ति नहीं हुई अब जीवन पर्यन्त भी उनकी स्पृहा नहीं है।" यह सुन देवोंने जैनशासनकी प्रशंसा की।

फिर एक अरण्यमें जमदग्नि नामक वृद्ध तापस चिर कालसे तपस्या करता था वहां आ चकलीका रूप लिये उसकी दाढ़ीमें घोंसला बना लिया। [illegible] [illegible]

चकलीसे कहा कि, "हे प्रिया ! मैं हिमवंत पर्वत पर जाता हूँ, कुछ दिनो मे वापस आउंगा ।" चकलीने कहा कि, यदि वहां तुमको किसी दूसरी चकली पर आसक्ति हो जाये तो फिर मैं बिना पति से क्या करूंगी ?" यह सुन चकलेने वापस आनेके लिए गौहत्या आदिका शपथ खाया । तब चकलीने कहा कि, "यदि तुम वापस न आओ तो इस ऋषिका पाप तुम्हनें लगे ऐसा यदि तुम शपथ ग्रहण करोतो जाने दूं ।" यह सुन तापस क्रोधातुर हो गया और उन पक्षियोंको पकडनेके लिये दाढीमे हाथ डाल उनको पकड़ कर कहा कि, "अरे पक्षियों ! मैं पापी कैसे हूं ? यह बतलाओ ।" तब पक्षियोंने कहा कि, "हे तपोनिधि ! क्रोध न करो तुम्हारा शास्त्र देखो उसमे कहा है कि:-

अपुत्रस्य गति र्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ।
तस्मात् पुत्रमुखं वीक्ष्य, सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१॥

भावार्थ:-"अपुत्रकी गति नहीं होती तथा स्वर्गतो कभी भी नहीं मिलता अतः पुत्रका मुंह देखकर फिर सब कार्य सिद्ध करने चाहिये ।"

"अतः हे ऋषि ! तुम पुत्र रहित हो इसलिये तुम्हारी सद्गति कैसे होगी ?" इस प्रकार सुन कर वह तपस्वी मनमें क्षोभित हुआ और तपस्या छोड़कर कोष्ठक नामक नगरमें गया । वहां जीतशत्रु नामक राजा था । उसके पास जाकर उसने कन्याकी याचना की । राजाने कहा कि

चले गये । दैवयोगसे थोडेसे दिन बाद ही उस ब्राह्मणके घरमें दूसरा आदमी मर गया और उसी प्रकार उसके ज्ञाति भोजनके दिन वे साधु मासक्षमणके पारणे वहां गये । उस दिन भी बहुत समय तक खडे रहे. पर भी भीक्षा न मिलने पर उस साधुने कोपसे कहा कि, "फिर में ऐसे ही कार्यके समय पर आउंगा ।" ऐसा कह वे चले गये । विधिके वशसे उसके घरमें तीसरा मनुष्य मर गया । उसके ज्ञाति-भोजनके दिन फिरसे उसी प्रकार वे साधु आये । उस समय भी भिक्षा न मिलनेसे कोपसे बोला कि, "इस कार्यमें नहीं देते तो फिरसे पिछा ऐसे ही कार्यमें आउंगा ।" ऐसा कहकर जाते समय मार्गमें द्वारपालने उस साधुको देखकर घरके स्वामीसे कहा कि, "यह साधु बारंबार भिक्षा न मिलनेसे क्रोधकर जाता है इसलिये इसको सन्मानपूर्वक भिक्षा दो ।" घरके स्वामीने विचार किया कि "इसका कोई भी कारण होना चाहिये अन्यथा प्रत्येक महिने ऐसा मरण प्रसंग क्यों आये? क्योंकि ऐसे ऐसे खर्चेसे तो मैं थक गया हूँ इसलिये इस साधुको संतोष कराउँ ।" ऐसा निश्चय कर शीघ्र खडा हो उस साधुके पास जा उसको नमस्कार कर बोला कि—"हे स्वामी! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और इस घेवरको ग्रहण कर मेरे पर अनुग्रह कीजिये, तथा जीवदान दीजिये ।" इसप्रकार उसको अनेक प्रकारसे खुश कर मदेन्द्रपनसे घेवर वहराया । इसप्रकार [illegible] आदर कोपपिंड कहलाता है । यह वृत्तान्त तब पूर्ण

आलोयण देते समय जाना तो उन्होंने उसको योग्य अलोयणा दे शुद्ध किया ।

मानपिंडके विषयमें

लब्धिपूर्णस्त्वमेवासीत्युत्साहितोऽन्यसाधुभिः ।
गृहिभ्यो गर्वितो गृह्णन् मानपिंडः स उच्यते ॥१॥

भावार्थ :–"तुम ही सब लब्धीसे पूर्ण हो" ऐसा कह कर अन्य साधुओंसे उत्साहित किया हुआ यदि कोई साधु गृहस्थसे पिंड ले आये तो उसे मानपिंड कहते हैं ।"

दृष्टान्त

कोशल देशमें गिरिपुष्प नामक नगरमें सेव सम्बंधी कोई उत्सव था । इसलिये उस दिन प्रत्येक घरमें सेव बनाई थी । उस दिन युवान साधुओंमें परस्पर बातें चलते एक साधुने कहा कि, "आज तो गोचरीमें बहुत सी सेवे मिलेगी परन्तु जो कल सेवे लाये वो ही सच्चा लब्धिमान है ।" यह सुन अन्य साधु बोले कि, "अहो ! घी, गुड़, रहित और थोड़ीसी सेवे ले आये तो उससे क्या ? इतनेमें एक गर्वके पर्वत समान साधु बोला कि, "कल मैं बहुत सी सेवे लाउंगा ।" ऐसी प्रतिज्ञा कर दूसरे दिन वे साधु गोचरी गये । वहां एक गृहस्थके घर सेव देखकर उसकी स्त्रीसे उसने विविध युक्तिसे सेवकी याचना की, परन्तु फिरभी जब उसने सेव नही दी तो साधुने गर्वसे कहा कि, "किसी

खांडनेका कार्य करने लगा इसलिये लोग उसे किंकर कह पुकारने लगे ।

इसपर एक अन्य दृष्टान्त है कि– ब्रह्मदत्त चक्रीने जब उस पर प्रसन्न हुए किसी देवता सर्व जातिके तिर्यंचोंकी बोली समझनेकी विद्या मांगी तब देवताने कहा कि–"मैं यह विद्या तुझे दे दूंगा परंतु यदि यह बात तुम किसीसे कहोगे तो तुम मर जाओगे ।" ऐसा कह उसे विद्या दी। फिर एक दिन जब राजा अन्तःपुरमें गया तब उसके अंग-विलेपनके लिये रानी चन्दनका कचोला लेकर आई । उसे देख भींत पर रहनेवाली एक घरोलीने उसके पतिसे उसकी भाषामें कहा कि, "इसमेंसे मुझे चन्दन लाकर दो ।" तब उसने कहा कि, "यदि राजाके पासमें चन्दन लेने जाता हूं तो राजा मुझे मार डालेगा ।" उसने कहा कि, "यदि चन्दन लाकर न दोगे तो मैं मर जाउगी ।" यह बात सुनकर चक्री हंस पड़ा । उसे देख रानीने पूछा कि, "बिना किसी कारणसे आप क्यों हंसे ? इसका कारण बतलाइये अन्यथा मैं मर जाउंगी ।" राजाने कहा कि, चिताके पास चल क्योंकि जब मैं हंसनेका कारण बतलाउंगा तब मेरा मृत्यु हो जायगा । " ऐसा कहने पर भी रानीने जब हठ नही छोड़ा तब राजा चितामें प्रवेश करनेको चला। मार्गमें राजाके सेवक घोडेके लिये हरेजीका गाड़ा भरकर ला रहे थे । उसे देख किसी बकरीने बकरेसे कहा कि, मुझे एक जवका पुला लाकर दो ।" बकरेने कहा कि,

"यदि मैं तुझे वो लाकर दूं तो राजाके सेवक मेरे प्राण हर लेगें।" चकीने कहा कि, "तुम लाकर न दोगे तो मैं मर जाउंगी।" तब बकरा बोला कि, "मैं कोइ इस चक्रीके समान स्त्रीका चाकर नही हूं कि स्त्रीके कहनेसे करने को जाउँ॥ यह सुन चक्रीने विचार किया कि, "मैं पशुसे भी अधिक मूर्ख बना गया हूं कि जिस से स्त्री के कहने से मरनेको चल दिया" ऐसा विचार बकरेको गुरू-मान चक्री वापस लोट गया।

(५) कोई स्त्रीआशक्तपुरूप स्त्री के कहने से बचोंको खिलाते. उनको मुत्रोत्सर्गादि कराते, और उनके पोतडे धोने आदि का कार्य करने लगा जिसके वस्त्र सदैव दुर्गंधयुक्त रहते थे इससे लोग उसे हृदन (दुर्गंधी) कहने लगे।

(६) कोई पुरूप जब भोजन करने बैठा तब उसने उसकी स्त्रीसे शाक, छाश आदि मांगा। उस समय वह स्त्री काम मे व्यक्त होने से क्रोधित हो कर बोली कि," अपने हाथ से ही ले लिजिये।" इस लिये वह पुरूप गीध पक्षी की तरह कुछ बडबडाता बड़बड़ाता हाथ से ही लेने लगा।" उस से वह लोक में गिध पक्षी समान कहलाने लगा।

अतः ये छ प्रकार के पुरूप स्त्रीके आधिन हैं। इस प्रकार साधु के वचन सुन सभाके मनुष्योंने कहा कि-" हे

महान् लाभदायक सिद्ध हो।" ऐसा विचार कर उस श्राव-कने युक्तिपूर्वक विनय करके कहा कि, "हे स्वामी! आज जंगम कल्पवृक्ष तुल्य तथा गुरुसे दो प्रकारकी शिक्षा धारण करनेवाले आप अकस्मात् मेरे घर पधारे जिसमें मैं मेरेको बडाभागी समझता हूं। आपको शुद्ध चारित्रवाला स्वरूप देखकर मानों मैंने आज पुंडरीक स्वामी आदि सव पूर्व मुनियोंका दर्शन कर लिया है ऐसा मैं मानता हूं आपके संतोषामृतयुक्त आचरण और चरणकरणको धन्य है मै तो मोहजालमें फँसा हुआ लोभग्रस्ति इन्द्रियोंके क्षणिक सुखमें मग्न हुआ तथा स्त्री–पुत्रादिकमें आशक्त हुआ हूं इसलिये एक मुंहसे आपकी सद्भावनाका वर्णन करनेमें असमर्थ हूं। फिर भी आपने यहां पधार संसारमें डुबते हुए मुझ पर बड़ी कृपा की है। अब मैं आपसे एक प्रश्न करता हूं उसका उत्तर देनेकी कृपा करें। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल जब दो तीन तारा आकाशमें दिखाइ देते है उस समय नवकारसी आदि प्रत्याख्यान करता हूं आज मैने पुरिमड्ढका पच्चक्खाण किया है सो उसका कालपूर्ण हुआ है या नहीं।" यह सुन मुनिने श्रुतज्ञानका उपयोग दे. आकाशमें तारामंडलकी ओर देखा तो जान पडा कि अभी रात्रिके दो पहर व्यतीत हुए हैं इससे मध्य रात्रिका समय है, उतराध्ययनके छवीसवें अध्ययनमें कहा है कि :—

पढ़मपोरिसि सज्झायं, बीयं झानं च झायइ ।
तइयाए निद्दमोक्खंतु चउत्थिए भूयोवि सज्झायं ॥१॥

भावार्थः—" रात्रि की प्रथम पोरसीमें स्वाध्याय, दूसरी में ध्यान, तीसरी मे निद्रात्याग अर्थात् निद्रा लेना और चोथी में वापस स्वाध्याय करना चाहिये ॥

रात्रि के चार पहर जानने का उपाय

जं नेइ जया रत्तिं, नखतं तम्हिह चउब्भाए ।
संपत्ते विरमिज्जा, सज्झायओ पओस कालंमि ॥२॥

भावार्थः—" जब जो नक्षत्र रात्रि को समाप्त करे, अर्थात् जिस नक्षत्र के जिस स्थान पर अस्त होनेसे रात्रि पूरी होती हो वह नक्षत्र प्रदोप काल में जहांसे आकाश के चोथे भागमें आवे उस समय (पहला प्रहर पूरा हुआ जानना सज्झाय से विराम पाना चाहिये, (इसी प्रकार चारों प्रहर के लिये समझ ले)

इस प्रकार विचार करते हुए उस साधुने उसके मन का भ्रमितपन भी जान लिया और मनमें विचार लगा कि, " अहो ! मुज मुर्ख ने विरूद्ध आचरण किया, लोभसे पराभव पाये मेरे जीवनको धिक्कार हैं । " ऐसा विचार कर उसने श्रावकसे कहा कि—" हे जैन तत्त्वज्ञ श्रावक ! तू धन्य है और कृत पुण्य हैं । तूने मुझे सिंहकेसरिया दे कर और पुरिमड्ढ पच्चखाण सम्बन्धी प्रश्न कर संसार मे डूबने

मुझको रक्षण किया है तेरा ज्ञान सच्चा है अपितु मुझ मार्ग भ्रष्टको मार्गमें लानेसे तु मेरा धर्मगुरु है । तेरी चतुराई तथा धैर्य वाणीका वर्णन नहीं किया जा सकता " आदि स्वनिंदा और उस श्रावककी श्लाघा कर फिर रात्रि होनेसे चलनेका आचार न होनेसे उसने श्रावकसे रहनेके स्थानकी याचना कर वे वहां एकान्तमें ध्यानमग्न रहे ।

प्रातःकाल उस आहारको परठवने (फैंकने)के लिए शुद्ध स्थंडिल भूमि देखकर विधिपूर्वक मोदकका चूर्ण करते हुए वे ढंढकमुनि सदृश भावना भाने लगे और शुद्ध ध्यानरूपी अग्निद्वारा कर्मरूपी इन्धनको जलाने लगे । इसप्रकार एक क्षणमात्रमें समग्र घातिकर्मका नाश हो जानेसे उनको केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया । देवताओं द्वारा निर्मित सुवर्ण कमल पर बैठकर उन्होंने देशना दी । उक्त श्रावक आदि सब लोग यह देख आश्चर्यचकित हो गये ।

इन मुनिद्वारा लिये सिंहकेसरिया लड्डुके समान लोभ-पिंड शुद्ध न होनेसे ग्रहण करने योग्य नहीं है । ऐसा समझे और श्रावकके युक्तियुक्त वचनसे उन मुनिने अपने गुणका स्मरण किया तथा व्रतके रागी थे इससे उन्होंने परमात्मपद प्राप्त किया ऐसा जानना चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृतौ सप्तदशस्तंभस्य सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमःप्रबंधः ॥२४७॥]

व्याख्यान २४८

दशवें अद्धा पच्चखाणके दश भेद और उनका फल

प्रत्याख्यानानि दिग्भेदे, कालिकानि प्रचक्ष्यते ।
प्रत्याख्यानं प्रतीत्यैकं, वर्धमानफलं भवेत् ॥१॥

भावार्थ :—"प्रत्याख्यानके मुख्य दश भेद हैं।" उनमेंसे कालप्रत्याख्यानके भी दस भेद हैं। जिनका वर्णन किया जाता है। ये प्रत्येक प्रत्याख्यान अधिकाधिक फल देनेवाले हैं।"

पूर्वाचार्योंने जो अद्धापच्चखाणके दश भेद प्रत्याख्यान भाष्यमें बतलाये हैं वे इस प्रकार हैं कि :—

नवकारसहिय पोरिसी, पुरिमड्ढेगासणेगठाणेय ।
आयंबिल अब्भत्तट्ठे, चरमे अभिग्गहे विगई ॥१॥

भावार्थ :—"नवकारसी, पोरसी, पुरिमड्ढ, एकासना, एकलठाणा, आंबिल, उपवास भवचरिम अथवा दिवस चरिम, अभिग्रह और विगई। ये दश प्रकारके प्रत्याख्यान हैं।

इनमें प्रथम नवकारसी पच्चखाण है। इसमें प्रत्याख्यानके भंगका दोष टालनेके लिये [1]अनाभोग तथा [2]सह-

---

१. अजानपन २. अकस्मातपन

साकाररूप दो आगार ;(अन्नथ्यणाभोगेणं, सहसागारेणं) जानना । यहां यदि किसीको शंका हो कि—" नवकारसीके पच्चखाणमें कालका कोई मान नही बतलाया गया हैं, इससे यह संकेत पच्चखाण होगा ऐसा अनुमान किया जाता है कि-नवकारसीमें भी, "सूरे उगए"का पाठ है इससे यह पच्चखाण सूर्योदयसे ही होता है ।

प्रश्नः—यहां मुहूर्त शब्दको विशेष्य होना नहीं बतलाया गया फिर उसे क्यों माना जावे ? क्योंकि जब आकाश पुष्प ही असत्य है तो फिर समझदार पुरुष उसके खुश-बूदार, सुन्दर आदि विशेषण क्यों कर लगायें ?

उत्तरः—नवकारसी को अध्यापच्चखाणमें प्रथम स्थान दिया गया है, तथा उसके पश्चात् दूसरा पच्चक्खाण पोरसी का बतलाया गया है इसलिये पोरसी के पहलेका समय मात्र मुहूर्त ही अवशेष रहता हैं इसलिये मुहूर्त शब्द को विशेष्य में मानलेनेमे कोई अनुचित नही है ।

प्रश्नः—कदाच ऐसा हो फिर भी एक ही मुहूर्त क्यों कहा जाता है ? दो तीन मुहूर्त क्यों नहीं ले लेते ?

जबावः—नवकारसी के आगार मात्र दो ही है और पोरसी के छ है, इसलिये नवकारसीका काल बहुत ही सूक्ष्म होना चाहिये । इसलिये एक ही मुहूर्त का काल गिनना योग्य है । अपितु जब पच्चखाण नवकारसहिका है इसलिये एक मुहूर्तका काल पूर्ण होने बाद भी नवकार गिने

गृहस्थ व साधर्मी के आहारमें होता है अथवा अब भोजन सहज जो अन्नादिक आहारादि कर दिये जावे उसे आगारम् कहते हैं । इस पच्चक्खाणमें भी आठ आगार हैं परन्तु वे एकासणासे भिन्न हैं ।

सातवां अभत्तार्थ अर्थात् उपवासका पच्चक्खाण । इसके पांच आगार हैं । जिसमें भोजन करनेका प्रयोजन न होनेसे उसे अभत्तार्थ अर्थात् उपवास कहते हैं । यदि अगली रात्रिको चोविहारका पच्चक्खाण किया हो और दूसरे दिन उपवास किया जावे तो उसे चोथभक्त पच्चक्खाण दीया जाता है और अगली रात्रिका पच्चक्खाण किये बिना यदि दूसरे रोज उपवास किया जावे तो उसे पच्चक्खाणमें मात्र "अभत्तट्ठ" कहकर ही पच्चक्खाण दिया जाता है चोथ नहीं कहा जाता अपितु यदि अगले तथा पिछले दिन एकासणा कर बीचमें उपवास करे तो उसे चोथ भक्त कहते हैं ऐसा वृद्ध संप्रदाय का मत है ।

आठवां चरिम अर्थात् दिनके पिछले भागमें तथा आयुष्य के पिछले भाग में जो पच्चक्खाण लिये जाते हैं उन्हें "दिवस चरिम" अथवा "भवचरिम" कहते हैं । इसमें चार आगार हैं । साधु को जीवन पर्यन्त सदैव रात्रिमें त्रिविध त्रिविध भागसे चोवीहार पच्चक्खाण होते हैं और श्रावकों को शक्ति अनुसार चौवीहार, तिविहार आदि पच्चक्खाण हो सकते हैं,

नवमां अभिग्रह पच्चक्खाण है इस के भी चार आगार बतलाये गये हैं । अंगुठि मुट्ठी, ग्रन्थी (गांठ) आदि सहित

हो और गुरू अजान हो और (४) शिष्य तथा गुरू दोनों अजान हो। इन चार भागोंमे से प्रथम शुद्ध है। दूसरा भी शुद्ध है, क्योंकि यदि गुरु ज्ञाता होतो अज्ञान शिष्य को भी समजा कर प्रत्याख्यान करा सकता है अन्यथा वह भाग अशुद्ध है। तीसरा भाग भी अशुद्ध है परन्तु यदि वैसे ज्ञाता गुरू न मिले तो गुरूके सदृश बहुमानसे गुरु, सम्बन्धी, पिता, काका, मामा, भाई या शिष्य आदि अजान को भी साक्षीरूप बना प्रत्याख्यान ग्रहण करेतो उसके स्वयं के ज्ञाता होनेसे उसे शुद्ध समझे। चोथा भाग तो सर्वथा अशुद्ध ही है।

उत्तरगुण प्रत्याख्यान के दस भाग हैं। वे निरन्तर उपयोगी होनेसे प्रथम उन्हींका स्वरूप बतलाया जाता है।

अणागयमइक्कंतं, कोडीसहियं नियंटि अणागारं।
सागार निरवसेसं, परिमाणकडं संके अद्धा ॥१॥

शब्दार्थ :—अनागत, अतिक्रांत, कोटीसहित, नियंत्रित, अनागार, सागार, निरवशेष, परिणामकृत, संकेत, और अध्धा ये दश प्रकार हैं।

१ पर्यूषण आदि पर्व आगे आने वाले हों, उनमें अट्टम आदि तप करना हो परन्तु पर्यूषणमें तप करनेसे गुरु, ग्लान आदिकी वैयावच्च करनेमें अन्तराय आयगा ऐसा यदि विचार आता हो तो उस पर्वके आनेसे पूर्व ही उस तपको कर लेना अनागत तप कहलाता है। २. पर्यू-

किया जाता है उसे अनागार पच्चक्खाण कहते हैं । ६ महत्तरादिक आगार सहित जो पच्चक्खाण किये जाते हैं उन्हें सागार पच्चक्खाण कहते हैं । इनमें महत्तरागार होनेसे किसी महान् कार्यके प्रसंग पर गुरुकी आज्ञा द्वारा यदि पच्चक्खाण करलेने परभी कदाच भोजन करना पड़ेतो उसमे पच्चक्खाणका भंग नही होता है । ७ चार प्रकारके आहारका सर्वथा त्याग करना निरवशेष पच्चक्खाण कहलाता है उसमे अशन अर्थात् लड्डु, मांडा, खाजा आदि, पान अर्थात् पीने योग्य वस्तु, खर्जूरका रस, द्राक्ष रस आदि, खादिम अर्थात् नारियल, आदि फल तथा गुड़ धाना आदि और स्वादिम अर्थात् इलायची, कपूर, लविंग, सुपारी आदि । इन चारों प्रकारके आहारका त्याग किया जाता है । ८ आठवां परिमाण कृत पच्चक्खाण है इसमें कवल तथा भिक्षाके घर आदिका संख्या रखना अर्थात् नियम रखना होता है । इस व्रतमें जितना परिमाण किया हो उससे अधिक वस्तु किसी भी दशामें काममें नहीं लेना चाहिये ।

नवमा संकेत पच्चक्खाण है । इसमें "संकेत" अर्थात् जो "घर" सहित हो वह "गृहस्थ"; अथवा संकेत अर्थात् गृहस्थके करने योग्य पच्चक्खाण को सांकेत पच्चक्खाण कहते हैं । यह पच्चक्खाण प्रायः गृहस्थोंका ही होता है अथवा "केत" अर्थात् चिन्ह और "सं" अर्थात् सहित, अर्थात् किसी भी चिन्हके साथ किया जाता है । जैसे कोई [illegible] पच्चक्खाण लेकर [illegible]

उसने उसके स्वजनोंसे कहा कि, "मैं किसी भी समय ऐसा हिंसक कार्य नही करुंगा।" ऐसा कह उसने प्रफुल्लित मनको निरवशेष अनशनका पच्चक्खाण किया। अर्थात् आहारका त्याग कर दिया। वहांसे मर वह राजगृह नगरमें मणिकार श्रेष्ठीके घरमें पुत्ररुपसे उत्पन्न हुआ। मातापिताने उसका नाम दामन्नक रक्खा। अनुक्रमसे वृद्धि पाता हुआ वर्ष की आयुका हुआ तब मारीके उपद्रवसे उसके सब कुटुम्ब का नाश हो गया इससे भयभीत हो वह उसके घरसे भग गया। भटकते भटकते उसी नगरमें सागरदत्त श्रेष्ठीके घर पहुंचा और नोकरी कर आजीविका उपार्जन करने लगा।

एक दिन कोई दो साधु गोचरीके लिये उस श्रेष्टीके घर आये। जिनमेंसे बड़े साधु सामुद्रिक शास्त्रमें निपुण थे उन्होंने दामनकको देख दूसरे साधुने कहा कि, "यह जो दासपनका कार्य करने वाला पुरुष है वह वृद्धि पाकर इसी घरका स्वामी होगा।" इस प्रकार साधुका वचन श्रेष्टीने दिवालके आड़में खडे रहकर सुन लिया जिस पर मानो वज्रपात हो गया हो वैसे उसको अत्यन्त खेद हुआ। उसने विचार किया कि, "इस बालको किसी भी उपायसे आज ही मार डालना चाहिये कि जिससे बीजका ही नाश हो जाने पर अंकुर कैसे पैदा होगा?" ऐसा विचार उसने उस बालकको लड्डुका लोभ दे उसे चांडालके घर भेजा वहां उस श्रेष्ठीने एक चांडालको द्रव्य दे छीपा रक्खा था और उसे कह रक्खा था कि, "मैं जिस बालकको तेरे पास भेजूं

उसने धनदत्तसे पूछा कि, "तुम यहां कहांसे आये हो ?" धनदत्तने कहा कि, "मेरी सुवर्ण ईंटे लेनेको आया हूं इसलिये यदि तुम इन ईंटोंको भाड़ा लेकर ले जाओतो इनमेंसे चौथा भाग तुमको दूंगा !" वहान वालेने यह शर्त स्वीकार कर उन इट्टेको वहानमें भरा दिया। फिर विश्वास दिलाकर उस वहानवालेने ईट्टेके लोभसे उसे एक कुएमें डाल दिया।

धनदत्तने कुऐंमें पगथिये देखे। उन पगथियोंके रास्ते अन्दर प्रवेश करने पर उसने जन रहित शुन्य नगर देखा। वहां चक्रेश्वरी देवीका मनोहर मन्दिर देख वह उसमें गया। देवीको वन्दन कर उसकी पूजा की ! भक्तिसे प्रसन्न होकर देवीने उसे पांच रत्न दिये। जिनमेंसे एक सौभाग्य, दूसरा रोगनाशक, तीसरा आपत्तिरक्षक, चोथा विपहरण, और पांचवा लक्ष्मीदायक था। उन रत्नोंको उसने उसकी जंघा चीर कर उसमें छिपा दिया। फिर धनदत्त नगरमें आगे बढ़ा परन्तु उसने वहां कोई भी मनुष्यको नही देखा चलते चलते वह राजमहलमें गया और ऊपर चडा जहां उसने एक सुन्दर कन्या देखी। उस कन्याने उसका सन्मान किया। धनदत्तने जब उसे उस नगरके जन-शुन्य होनेका कारण पूछा तो उसने जवाब दिया कि, "यह तिलकपुर नामक नगर है इस नगरका मेरा पिता महेन्द्र नामक राजा था। एक दिन शत्रुओंने आकर इस नगरको घेर लिया। उसी रात्रिको कोई व्यंतर मेरे पिताके पास आया। मेरे पिताने उससे पूछा कि-"तू कौन है ?" तब व्यंतरने कहा कि, "मैं तेरा

वाहनका स्वामी उस स्त्रीका स्वरुप तथा द्रव्य देखकर इस पर मोहित हो गया इसलिये उसने मार्गमें धनदत्तको मैत्रीभावसे विश्वास दिला समुद्रमें फैंक दीया। धनदत्त तो सदैव उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ सुखदुखमें समान भावसे रहता था। समुद्रमें गीरते ही उसका हाथ पाटिये पर गिरा उसने उसको पकड लिया। समुद्रके जल पर जब वह तैर रहा था कि एक बड़ा मत्स्य उस पाटियेसहित निकल गया। वहां उसे बडा खेद तथा कष्ट हुआ परन्तु वह तो गाथाका अर्थ ही सोचने लगा कि, "जैसा सुखदुःख लिखा हो वैसा ही भोगना ही पडता है।"

उक्त मत्स्य मनुष्यके भारसे पीडित होकर समुद्रके किनारे पर चला गया जहां मच्छीमारने उसे पकड लिया जिसको चीरने पर उसके उदरसे धनदत्त निकल पड़ा। वह मूर्छित हो गया था जिसको मच्छीमारने शीत [illegible] सचेत किया। फिर कनकपुरके राजाको यह वृत्तान्त [illegible] उसे राजाके पास ले गया। राजाने उससे उसका [illegible] पूछा तो उसने पहलेसे कुछ वृत्तान्त कह दिया जिससे प्रसन्न हो राजाने उसे अपने भण्डारका अधिकार बताया। [illegible]
[illegible]

उपहार रख कर बैठा, वहां उसने धनीधरको देखा और पहचान लिआ, इससे उसने सोचा कि–यह नया आया होगा इससे उसका कुल, आदि कोई नही जानता होगा इसलिये यदि इसको नीच जातिका बतलादूं तो मेरा कष्ट नाश हो जायगा।" ऐसा विचार कर उसने चांडाल से जाकर कहा कि, "मैं तुजे सोनेकी ईंटें दूंगा परन्तु तू राजसभामे जाकर राजाके धनीधरसे भेट कर उससे कहना कि,–"हे भाई ! तू मुजसे कई दिन पश्चात् मिला। इतने दिन कहां गया था ?' ऐसा कह कर उसे तुम्हारी जातका होना साबित करना।" चांडाल ने उसकी बात स्वीकार कर दूसरे दिन वैसा ही किया। जिसे सुन राजाने उस चांडालसे पूछा कि–"यह क्या है ?" तब चांडालने कहा कि, "यह मेरा भाई है, इसने मैने कई दिन बाद देखा है इससे रोता हूँ।" यह सुन राजाने धनीधरसे पूछा कि, "अरे रे ! तू मेरे घर कहांसे आया ? तूने हम सबको चांडाल सदृश बना दिया। इस पर उसने जवाब दिया कि, "हे स्वामी ! सुनिये, इस विषयकी बहुत लम्बी बात है।" ऐसा कह उसने गाथा ग्रहण की तबसे आरंभ कर सब हकीकत राजासे निवेदन की और देवी द्वारा दिये पांचों रत्न उसकी जंघासे निकाल कर राजाको बतलाये। फिर राजासे कहा कि–"ये पांच रत्न मेरे पास रहे हैं, शेष उसके पहलेका मेरा सर्व द्रव्य इसके पास है।" यह सुन राजाने उक्त चांडालको खूब पिटवाया तब उसने कबूल किया कि, "नये आनेवाले वाहन वालेने मुझे सुवर्ण ईंटे देकर यह प्रपंच मुझसे कराया है।" ऐसा कह उसने राजाको वे ईंटें बतलाई। राजाने जब ईंटोंको तोड़ा तो

व्याख्यान २५१

मौन एकादशी की कथा

प्रणम्य श्रीमद्वामेयं, पार्श्वयक्षादिपूजितम् ।
महात्म्यं स्तौमि श्रीमौनैकादश्या गद्यपद्यभृत् ॥१॥

भावार्थ :—"श्री वामा माताके पुत्र, यक्षादिकसे पूजित श्री पार्श्वनाथ प्रभुको नमस्कार कर गद्य पद्यात्मक मौन एकादशीका महात्म्य कहता हूँ ।"

एकदा द्वारका नगरीमें श्रीनेमनाथ स्वामी समवसर्ये जिसकी सूचना वनपालकके मुंहसे सुन श्रीकृष्ण अत्यन्त हर्षित हुए। वे वनपालको योग्य दान दे सर्व समृद्धि सहित शिवा रानीके पुत्र श्रीनेमनाथ प्रभुको वन्दना करनेको गये । विधि [पू]र्वक वंदना कर योग्य स्थान पर बैठ निम्नस्थ भगवान की [दे]शना सुनि कि:—

एगदिने जे देवा, चवंति तेसिंपि माणुसा थोवा ।
कत्तो मे मणुय भवो, इति सुरवरो दुहिओ ॥१॥

भावार्थ :—"एक दिनमें जितने देवता चवते हैं उनसे [भ]ी इस पृथ्वी पर मनुष्यकी संख्या कम है इसलिये देवता [ल]ोग पिचार करते हैं कि, "हमको मनुष्य भव क्यों कर

मिले ?" अतः वे दुःख उठाते हैं इस प्रकार मनुष्य भवको देवताओंको भी दुर्लभ समझ इसमें प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिये ।"

अन्नाण संसओ चेव, मिच्छत्ताणं तहेव य ।
रागो दोसो मइब्भंसो, धंमंमि य अणायरो ॥१॥

जोगाण दुप्पणिहाणं, पमाओ अठ महा भवे ।
संसारूत्तरकामेणं, सव्वहा वज्जियवओ ॥२॥

भावार्थ :—"अज्ञान, संशय, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मतिभ्रष्टता, धर्म पर अनादर और योग दुःप्रणिधान—इस प्रकार प्रमाद आठ प्रकारका है ! संसारसे मुक्त होनेके इच्छुकको इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये ।"

आदि धर्म देशना सुन श्रीकृष्णने प्रभुसे कहा कि,—"हे भगवन् ! मैं अहर्निश राज कार्यमें व्यग्र रहता हूँ फिर निरंतर धर्म कसे कर सकता हूँ अतः सम्पूर्ण वर्षमें एक उत्तम दिन जो साररूप हो बतलाइये ।" भगवानने कहा कि, "हे कृष्ण ! यदि तुम्हारी इच्छा होती मार्गशीर्ष मांसकी शुल्क एकादशीका उत्तम रीतिसे आराधन करो । उस दिन वर्तमान चोवीशीके तीन तीर्थंकरके मिला कर पांच कल्याणक हुए हैं । इसके विषयमें कहा गया है कि:—

अस्यां चक्रिपदं हित्वा, ग्रहीदरजिनो व्रतम ।
जन्म दीक्षां च सज्ज्ञानं, मल्ली ज्ञानं नर्म

भावार्थ :–"इस एकादशीके दिन श्री अरनाथ प्रभुने चक्रवर्तीपनका त्याग कर चारित्र अंगीकार किया था। मल्लीनाथ का जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान ये तीन कल्याणक हुए थे। और नमीनाथ का केवल ज्ञान कल्याणक हुआ था।"

इस प्रकार नियमपूर्वक उस दिन पांच भरतमें और पांच ऐरावतमें तीन तीन तीर्थंकरोके मिलकर पांच पांच कल्याणक होनेसे पचास कल्याणक हुए हैं। इसी प्रकार अतीत, अनागत और वर्तमान समयके भेदसे एकसो पचास कल्याणक तीस चोविशीमें नव्वे तीर्थंकरोंके हुए हैं। इससे यह दिन सबसे उत्तम है।

अर्कपुराण नामक शैवी शास्त्रमें भी इस एकादशी के महात्म्यका वर्णन किया गया है कि, "हे अर्जुन! हेमन्त ऋतुमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल एकादशीके दिन अवश्य उपवास करना चाहिये क्योंकि जो सदैव अपने घर दो लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराता है। उसे जितना फल मिलता है उतनाही फल मात्र इस एकादशीके एक उपवाससे मिलता है। जिस प्रकार केदारनाथ तीर्थमें उदकपान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता वैसेही इस एकादशीके उपवाससे भी पुनःजन्म नहीं होता। हे अर्जुन! यह एकादशी गर्भवासका नाश करती है इसलिये इस व्रतके पुण्य समान दूसरा कोई पुण्य नहीं होता और नहीं होगा। हे अर्जुन! हजार गायोंके दानमें जितना पुण्य होता है। हजार ब्रह्मचारीको भक्तिसे

जितना पुण्य होता है उससे अधिक पुण्य एकवानप्रस्थाश्रमीकी भक्तिसे होता है। हजार वानप्रस्थाश्रमीकी भक्तिसे अधिक पुण्य पृथ्वीके दान करनेसे होता हैं। भूमिदानसे दश गुना पुण्य विद्यादानसे होता है। विद्यादानसे सो गुना पुण्य भूखेको अन्न देनेसे होता है उससे सो गुना पुण्य गोमेध यज्ञसे, उससे सो गुना अश्वमेध यज्ञसे, उससे सो गुना नरमेध यज्ञसे, और उससे हजार गुणा केदारनाथकी यात्रा करनेसे होता है परन्तु इस एकादशीके पुण्यकी तो संख्याही नही है इसलिये ब्रह्मादि देवभी इस व्रतका आचरण करते हैं।" आदि लौकिक शास्त्रमे भी हे कृष्ण ! इस एकादशीका महात्म्य वर्णित किया गया है।"

महा साहसिक पुरूषोंको भी दुर्माप्य ऐसे दुरंत संसार रूपी महासागरको तैरनेमें वाहन सदृश और चोराशीलाख जीवा-योनियोंमें परिभ्रमण करनेसे दिग्मूढ़ हुए प्राणियोंको महा वैराग्य उत्पन्न करनेवाली तथा मुख्यतया पांच पर्वणीके आराधन का उत्तम फल दिखानेवाली देशना सुनकर सुव्रत श्रेष्ठिको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। फिर उसने गुरुसे पूछा कि, "हे पूज्य ! मैंने पूर्वभवमें एकादशीका तप किया था जिसके प्रभावसे मैं ग्यारहवें देवलोकमें उत्पन्न हुआ और वहांसे चलकर यहां भी ग्यारह करोड़ सुवर्णका स्वामी हो गया हूं इसलिये अब मैं कौनसा सुकृत करूं कि जिससे असाधारण फलका भोक्ता बन सकूँ।" गुरुने कहा कि,— "श्रेष्ठि ! जिससे तुझे इतना सुख प्राप्त हुआ हैं उसी एकादशीका सेवन कर क्योंकि जिससे देहव्याधि रहित हुआ हो उसी औषधका सेवन करना चाहिये। अपितु कहा है कि—

विधिना मार्गशीर्षस्यैकादश्या धर्ममाचरेत् ।
य एकादशवर्षैरचिरात् स शिवं भजेत् ॥१॥

भावार्थ :—"जो पुरुष मार्गशीर्षकी शुक्ल एकादशीके दिन विधिपूर्वक ग्यारह वर्ष पर्यंत धर्मका आचरण करता हैं वह अल्प समयमें ही मोक्ष प्राप्ति करता है।"

ऐसा गुरू मुखसे सुनकर सुव्रत श्रेष्टीने उसकी पत्नी-सहित मौन एकादशी तपको अंगीकार किया। यकबार जब श्रेष्टी उसके कुटुम्ब सहित आठ पहरका पौषध व्रत लेकर

"शास्त्रोक्त विधिपूर्वक जो लोग अपनी शक्ति अनुसार एकादशीका व्रत अंगीकार करते हैं वे स्वर्गका सुख भोग अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करते हैं ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य एकपंचाशतधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २५१ ॥]

व्याख्यान २५२

समकितमें शंका न करनेके विषयमें

नास्ति जीवो न स्वर्गादि, भूतकार्यमिहेष्यते ।
इति प्रभृति शंकातो, सम्यकृत्वं खलु पात्यते ॥१॥

भावार्थ :–"इस जगतमें जीव नामकी न तो कोई वस्तु ही है, न स्वर्ग, नरक आदि ही है, यह सब मात्र पंच महाभूत का ही कार्य है आदि शंका करनेसे समकित का नाश हो जाता है।" इस पर निम्नस्थ दृष्टान्त है कि:–

अपाढाचार्य का दृष्टान्त

किसी साधुसंघमें पूर्वमें अपाढ़ा नामक आचार्य हुए थे । वे अन्तावस्था प्राप्त हुए प्रत्येक शिष्यको निझामणा करा कहते रहते थे कि, "हे शिष्य ! यदि तू स्वर्गमें देवता हो जाये तो मुजे अवश्य दर्शन देना ।" इस प्रकार अनेकों शिष्योंको कहने पर भी स्वर्गमें गया कोई शिष्य उन्हें दर्शन देने नहीं आया । एकबार उन्होनें उनके अति वल्लभ शिष्यको निजामणा करा उससे कहा कि, "हे वत्स ! यदि तू जो देव होतो मुजे अवश्य दर्शन देना ।" ऐसा उन्होंने अति आग्रह पूर्वक कहा और उसने भी यह बात स्वीकार की । फिर वह शिष्य काल कर देवता

आगे चलने पर आकस्मिक आगत दूसरे बालकको भी प्रथम बालकके सदृश देखा। उसके भी अलंकार आदि लेनेको आचार्य उसीप्रकार उसे भी मारनेको तैयार हो गये। उस समय उस बालकने भी एक दृष्टान्त सुनाया कि, "कोई एक पुरुष सुभाषित (बोलने)में बड़ा चतुर था। वह एक बार गंगा नदीको पार करते हुए उसके जल प्रवाहमें बह चला। उस समय नदीके किनारे खड़े लोगोंने उससे कहा कि, "हे भाई! कुच्छ सुभाषित बोल" उसने कहा कि:

येन रोहंति बीजानि, येन जीवंति कर्षकाः।
तस्य मध्ये विपद्यंते, जातं मे शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ: "जिससे सब बिज उगते हैं और जिसके द्वारा कृषक जीवित रहते है उसी पानीमें मैं मर रहा हूं इससे मुझे जिसका शरण था उसीका भय प्राप्त हुआ है।"

यह सुन सूरिने कहा कि, "हे वत्स! तू बड़ा अच्छा पढ़ा हुआ जान पड़ता है" ऐसा कह उसे भी मार उसके ंकार ले लिये।

यत्र राजा स्वयं चौरो, भांडश्च पुरोहितः ।
[illegible] पौराः [illegible] शरणाद्भयमागतम् ॥३॥

भावार्थ :—"हे पुरवासियो , जहां राजा स्वयं चोरी करता है और जहां पुरोहित गालियें देता है उस नगरको छोड़ कर तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ क्यों कि जिसकी शरण थी उसीसे भय प्राप्त होने लगा है ।"

इस कथाके कहनेपर भी जब मुनिने अपनी दुष्टता नही छोडी तो उस बालकने तीसरा दृष्टान्त कहा कि—किसी नगरमें एक कामान्ध ब्राह्मण रहता था । उसकी रूपवंती पुत्रीको देखकर उसके साथ क्रीडा करनेकी इच्छा हुई परन्तु लज्जावश वह दुष्ट अपनी इच्छाकी पूर्ति न कर सका जिससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया । उसकी स्त्रीने जब अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसके कृश होनेका कारण पूछा तो उसने उसका सही सही कारण कह सुनाया । उसे सुन उस स्त्रीने उसके पतिके प्राण बचानेके लिये उसकी पुत्रिसे कहा कि, "हे पुत्री ! हमारे कुलका यह रिवाज है कि प्रत्येक कुमारी

कन्याको प्रथम यक्ष भोगता है उसके पश्चात् उसका विवाह किया जाता है इसलिये तू कालीचतुर्दशीकी रात्रिको यक्षके मन्दिरमें जाना परन्तु वहां दिपक मत जलाना क्योंकि उससे यक्ष क्रोधित होता है।" यह सुन पुत्रिने माताके वचन अंगीकार किये परन्तु जाते समय शरावमें दिपक छिपा कर वे ले गई। फिर उसकी माताने उस ब्राह्मणको यक्षके मन्दिरमें भेजा वह वहां गया और उसकी पुत्रीसे निःशंक भोग सुखपूर्वक सो रहा। थोड़ी देर पश्चात् जब उस पुत्रीने कौतुकवश दीपक जला कर देखा तो उसके पिताको ही वहां सोता देखा। जिस पर उसने विचार किया कि, "अहो! मेरी माताने ही जब मेरे पर माया की है तो आजसे यह ही मेरा पति है। जब मैं नर्तकिने नाच करना आरंभ किया तो फिर घुंघट किस लिये निकालना?" ऐसा विचार कर वह पुत्रि भी जो क्रिडासे श्रमित हो गई थी निरान्तसे उसके साथ सो रही। प्रातःकाल होने पर भी जब उन दोनोंमेंसे एक भी न आया तो उसकी माताने वहां जाकर कहा कि, "हे पुत्री! अब तक क्यों नहीं जगती है?" पुत्रीने जवाब दिया कि, "हे मा! जब मैंने तेरे कथानानुसार किया तो यक्षने मुझे इसे ही पतिरूपसे दिया है इसलिये अब तू दूसरा पति ढूंढ ले।" यह सुन माताने कहा कि—

विष्टामूत्रे च चिरं यस्या, मर्दिते सापि नंदिनी ।
मत्कांतमहरत्तन्मे, जातं शरणतो भयम् ॥१॥

शासनकी निन्दा कराने वाली हे दुष्ट साध्वी! तू यहां कहा सें चली आई है?" यह सुन साध्वीने कहा कि:-

साह रे सर्षपामानि परच्छिद्राणी पश्यसि।
आत्मानो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि॥१॥

भावार्थ :-" वह साध्वी कहने लगी कि अरे! दूसरों के तो सरसवके दाने जितने सूक्ष्म छिद्रोंको भी तुम देखते हो और तुम्हारे खुदके मोटे बीले जितने छिद्रोंको देखते हुए भी नही देखते।"

"अपितु हे आचार्य! यदि तुम शुद्ध होके मेरे पास आओ ऊंचे कान कर क्यों भगते हो? तुम्हारा पात्र मुझे दिखलाओ।" ऐसे शब्द सुन सूरि तत्काल वहांसे भगकर आगे चल दिये। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें राजा का सैन्य दिखाई पड़ा जिनके भयसे वे सैन्यका मार्ग छोड़ कर दूसरे रास्ते चल दिये। किन्तु उधर तो दैवयोगसे राजाके समक्ष ही जा पहुंचें। उन्हे देख राजाने भी हाथीसे निचे उतर उनको नमस्कार किया और कहा कि, "हे गुरू! मैं वडा भागी हूं कि मुझे यहां आपके दर्शन हो गये। इसालये अब आप मुझ पर कृपा कर एषणीय मोदक आदि ग्रहण कीजिये।" यह सुन सूरिने विचार किया कि, "यदि मैं मोदक लेनेके लिए पात्र बाहर निकालूंगा तो मेरी चोरी प्रगट हो जायगी।" ऐसा विचार कर उन सूरिने कहा कि, "आज तो मेरे उपवास है" राजाने कहा कि, "मेरे

(१) शुभ लक्षण रहित होनेसे वेद वाक्य अनागम हैं उनमें धर्म अर्थात् आगमबुद्धि रखना, इसे अधर्ममें धर्म संज्ञा कहा गया है।

(२) सर्व कर्मके नाश करने वाले और शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति करानेवाले आप्त वचनोंमे अनागमकी (अधर्मकी) बुद्धि रखना अथवा ऐसा कहना कि "सब पुरुष हमारे समानही मनुष्य होनेसे रागादिक सहित ही होते हैं कोई सर्वज्ञ नहीं होता आदि अनुमान प्रमाणसे कोई भी आप्त नही है।" ऐसी कुयुक्ति कर आप्तप्रणीत आगममें अनागम बुद्धि रखना इसे धर्ममें अधर्म संज्ञा कहा जाता है।

(३(मोक्षपुरीका अमार्ग अर्थात् वस्तु तत्वकी अपेक्षासे विपरित श्रद्धानयुक्त ज्ञान और क्रिया करना उन्मार्ग कह-लाता है। उनमें मार्ग बुद्धि रखना उन्मार्गमें मार्ग संज्ञा कहलाती है।

(४) मोक्षपुरीके मार्गमें अर्थात शुद्ध श्रद्धासे ज्ञान और क्रिया करनेमें उन्मार्गपनकी बुद्धि रखना मार्गमें उन्मार्गमें संज्ञा कहलाती है।

(५) अजीवके विषयमें अर्थात आकाश, परमाणु आदिमें जीव है ऐसा मानना, यह शरीर ही आत्मा है ऐसा मानना अथवा पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्र, और सूर्य ये आठ महादेवकी मूर्तियें हैं आदि मानना अजवमें जीव संज्ञा कहलाती है।

(६) पृथ्वी आदि जीवोंमें घटके समान उच्छ्वास आदि जीवके धर्म नहीं दिखाई देते अतः यह पृथ्वी आदि अजीव है ऐसी युक्तिसे जीवमें अजीव बुद्धि रखना जीवमें अजीव संज्ञा कहलाता है ।

(७) छ काय जीवकी हिंसामें प्रवृत्त असाधुमें साधु बुद्धि रखना असाधुमें साधु संज्ञा कहलाती है ।

(८) "इसके पुत्रहीन होने तथा स्नानादिक न करने से इसकी सद्‌गति नहीं होगी । आदि कुतर्क कर पंच-महाव्रतादिकके पालन करनेवाले सुसाधुमें असाधु बुद्धि रखना साधुमें असाधु संज्ञा कहलाति है ।

(९) कर्मवाले और लौकिक व्यवहारमें प्रवृत्त हुए अमुक पुरुषोंको मुक्त मानना अर्थात् अणिमादि अष्ट सिद्धिको प्राप्त कुशल पुरुष सदा आनन्दपूर्वक रहते हैं, वे ही निवृ-त्तात्मा (मुक्त) हैं और वे ही दुस्तर संसारको तैर गये हैं आदि मानना अमुक्तमें मुक्त संज्ञा कहलाती है ।

(१०) समग्र कर्मविकारसे रहित तथा अनंत ज्ञानदर्शन त्र और वीर्यवान् मुक्त पुरुषोंको अमुक्त मानना मुक्तमें क्त संज्ञा कहलाती हैं ।

अब मिथ्यात्वके पांच प्रकार बतलाये जाते हैं:—

(१) अपने मतको ही प्रमाणरूप मानने वाले कुदृष्टि त्व मनुष्योंको जो मिथ्यात्व होता है उसे अभिग्रहिक यात्व कहा जाता है ।

कि महान् पापके कारण अर्धपुद्गल परावर्त तक भटक कर फिरसे सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं तब सादि सान्त मिथ्यात्व होता है उसे सादि सांत जाने। इन चार भांगोंमें सादि अनन्त नामक तीसरा भांगा जो है वह किसी भी जीवको लागु नहीं होता इसलिये शून्य जाने। क्योंकि सादि मिथ्यात्व भव्य प्राणियोंको ही हो सकता है इसलिये यह मिथ्यात्व अनन्त नहीं हो सकता। अर्ध पुद्गल परावर्त मेंतो उसका अन्त होता ही है

इस प्रसंग पर भव्य तथा अभव्यका स्वरूप जाननेकी इच्छासे शिष्यके प्रश्न करने पर गुरु कहते हैं कि, "जिनकी पर्याय द्वारा मुक्ति होगी अर्थात् जो मुक्तिके योग्य है वे भव्य, अवश्य मुक्तिमे जाये वे ही भव्य हो ऐसा नहीं है क्योंकि कई भव्य प्राणीभी सिद्धिको प्राप्त नहीं करते, अतः "सिद्धिके योग्य हो वे भव्य" ऐसा कहा गया है। अपितु "भव्वा वि न सिज्झिसंति केई" "कई भव्य प्राणीभी सिद्धिको नहीं पायेगें।" ऐसा वचन है और भव्यसे जो विपरीत अर्थात् जो कदापि भी संसार समुद्रका पार नहीं पाये, पाते नही और पायेगें भी नहीं उन्हें अभव्य जाने। यहां भव्य और अभव्यके लक्षण जानने के लिए वृद्ध पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो प्राणी संसारसे विपक्षभूत मोक्षको मानते हैं और मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा रखकर मनमें ऐसा विचारते हैं कि:-"भव्य होउंगा या अभव्य? यदि भव्य

व्याधि शान्त हो गई । मुनि वर्ग आनन्दित हो गये और देवतादिक भी हर्षित हुए । उस समय रेवती श्राविका भी त्रिकाल ज्ञानी परमात्माकी स्तुति करति हुई तीर्थंकर पदके योग्य अध्यवसायको धारण कर रही थी ।

उस समय गौतम गणधरने श्री वीरप्रभुको नमस्कार कर पूछा कि–"हे स्वामी ! आपका सर्वानुभूति शिष्य जो गोशालाकी तेजोलेश्यासे दग्ध हो गया था किस गतिको प्राप्त हुआ है ।" भगवानने कहा कि–"वह साधु सहस्त्रार नामक आठवें कल्पमें अठारह सागरोपम का आयुष्य वाला देव हुआ है । वहांसे चव कर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य हो मोक्ष गतिको प्राप्त करेगा ?" गौतम स्वामीने फिरसे पूछा कि–"हे भगवन् ! आपका शिष्य सुनक्षत्रमुनि किस गतिको प्राप्त हुआ ?" प्रभुने कहा कि, "वह साधु आलोचना प्रतिक्रमणा कर अच्युत्तकल्पमें बडे आयुष्यवाला देवता हुआ है वहांसे चव महाविदेहक्षेत्रमें मनुष्य बन सिद्धि पदको प्राप्त करेगा ।" गणधरने फिरसे पूछा कि, "हे प्रभु ! मंखली पुत्रने कौनसी गति प्राप्त की ?" प्रभुने कहा कि, "अन्त समय कुछ श्रद्धा हो जानेसे वह बारहवें देवलोकमें बाईस सागरोपमका आयुष्यवाला देवता हुआ है ।"

अब ग्रंथकार कहता है कि:–

किं करोति गुरुः प्राज्ञः, मिथ्यात्वमूढचेतसां ।
शिष्याणां पापरक्तानां, संसर्गोपगताद्दशां ॥१॥

भावार्थ :-" पाप कर्ममें रक्त और मिथ्यात्व द्वारा मूढ़ चित्त वाले गोशाला जैसे शिष्यका ज्ञानी गुरू भी क्या कर सकते हैं ?" गोशाला जन्मसे ही मिथ्यात्वी था परन्तु फिर उसे वीतरागके वचन सत्य होनेका विश्वास हो गया था और इसीलिये उसने " मैं जिन नहीं हूं, महावीर ही जिन है" ऐसा उसके शिष्योंको कहाथा पहले भी गोशाला "मुझे आपकी दीक्षा हो ।" ऐसा अपनी इच्छासे ही कहकर वह भगवानका शिष्य हुआ था । भगवानने भी उसे अपना शिष्य जानकर ही उपदेश दिया था परन्तु उसने उसको नहीं माना तिसपर भी अन्तमें भगवानने उसे मर्म वचन कह कर सद्-बुद्धि प्रदानकी थी " गोशाला जैसे कुरके क्रोधिपन पर ध्यान न देकर उल्टी उसे सद्बुद्धि प्रदान की इसलिये हे प्रभु ! आपके वीतरागपन को धन्य है ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तंभस्य चतुष्पंचाशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२५४॥]

आपके योग्य नहीं है" इनसे वह राजा कुछ पापकर्मसे पीछे हटेगा। एकदिन जब वह उद्यानकी शोभा देखने जावेगा तब एक स्थान पर वह तीर्थंकरके शिष्यके शिष्य त्रय ज्ञानके धारक तथा निरंतर छट्ठ तप करने वाले सुमंगल नामक साधुको आतापना करते देखेगा। उसे देख उस विमलवाहन राजाको क्रोध उत्पन्न होगा जिससे वह सिंह सदृश टेढी नजरसे उस ध्यानमें तत्पर मुनिको देखेगा। फिर तत्काल अश्वको त्वरित गतिसे हांक रथको साधु पर चढा देगा जिससे साधु गिर पडेगा, फिर जब उठ खडा होगा तो वह फिर उसपर रथ हांकेगा। दूसरी बार खडे होनेपर वह साधु मनमें विचार करेगा कि "अहो! यह जीव महा निर्दय क्यों है?" ऐसा विचार कर अवधिज्ञानसे देखनेपर उसे गोशालाका जीव जानकर कहेगा कि, "हे महापापी! आजसे तीसरे भवमें तू गोशाला था। उस समय तूने तेरी तेजोलेश्यासे श्री महावीर भगवानके सर्वानुभूति तथा सुनक्षत्र नामक दो शिष्योंको दग्ध कर दिया था। परन्तु वे साधु क्षमा धारण करनेमें महासमर्थ थे क्योंकि इन्द्रादिक देवोंका सामर्थ्य भी उनके सामने पंगुआ जैसा था फिर तेरे जैसेकी तो गिनती ही क्या है? परन्तु उनको धन्य है कि उन्होने तेरे द्वारा किया हुआ प्राणान्त उपसर्ग सहन किया। परन्तु नेत्रके प्रान्त भागमें भी क्रोधका लेशमात्र भी अंश नही लाये उसीप्रकार समग्र संसारी जीवोंसे भी अनन्त बलशाली श्री वीर परमात्मा पर भी तूने तेजोलेश्या छोडी, फिर भी

तुम इन्द्र बने हो, वर्तमान चोवीशीके अन्तिम चार तीर्थंकरोंके पांच कल्याणकोंके उत्सव तुमने किये हैं और आनेवाली चोवीसीके कई तीर्थंकरोंकी वन्दना तथा पूजा तुम करोगे। तुम्हारा आयुष्य दो सागरोपम से कुछ ही कम बाकी रहा है, "इस प्रकार गुरूके वचन सुन इन्द्र अत्यन्त हर्षित हुआ। फिर वह निगोदका स्वरुप पूछ निःशंक हुआ और श्री सीमंधर स्वामी द्वाराकी प्रशंसाका वर्णन कर कहने लगा कि, 'हे स्वामी! मेरे योग्य कार्य बतलाईये " तब गुरूने कहा कि, "धर्म आसक्त संघके विघ्नका निवारण करो।" फिर इन्द्रने स्वेच्छासे अपने आनेकी निशानीके रूपमें दिव्य एवं मनोहर उपाश्रयका एक द्वार दूसरी दिशामें कर शीघ्र स्वर्गमें चला गया।

तत्पश्चात् सूरिके शिष्य जो आहारके लिए नगरमें गये थे वे लौट आये। उन्होंने गुरूसे कहा कि, "हे स्वामी! इस उपाश्रयका द्वार दूसरी दिशामें कैसे हो गया? आप ही जब विद्याका चमत्कार देखनेमें स्पृहा रखते हैं तो फिर यदि हमारे जैसे ऐसा करे तो उसमें दोष ही क्या है?" यह सुन गुरूने इन्द्रके आगमन आदिका सब वृतान्त यथार्थरूपसे कह सुनाया। तब वे शिष्य बोले कि–'हमको भी इन्द्रका दर्शन कराइये।" गुरूने कहा कि, "देवेन्द्र मेरे वचनोंके आधीन नहीं है। वे तो उनकी इच्छासे ही आये थे और वापस लौट गये। इस विषयमें तुमको दुराग्रह करना उचित नहीं है।" इसप्रकार गुरु कहने परभी उन विनय रहित शिष्योंने

दुराग्रह नही छोड़ा और विनय रहितपन आहार आदि कराने लगे जिससे गुरू उद्वेगित हो एक दिन रात्रिके पिछले पहरमें सब शिष्योंको सोते छोड़ शय्यातर श्रावकको परमार्थ समझाकर नगरके बाहर चले गये। अनुक्रमसे विहार करते करते वे स्वर्ण भूमिमें आपहुंचे। जहां महाबुद्धिमान सागर नामक उनके शिष्य रहता था। उनके पास जाकर इर्यापथिकी प्रतिक्रमण कर तथा पृथ्वीको प्रमार्जित कर रहे। सागरमुनिने उनको पहले कभी नही देखा था इसलिये उनको पहचान न सके अतः न तो खडे ही हुए न वन्दना ही की। उनको सूरिने पूछा कि, "हे वृद्ध मुनि! आप किस स्थानसे आ रहे हैं?" तब गांभीर्यके समुद्र समान गुरु विना कुपित हुए ही बोले कि, "अवन्ती नगरीसे" फिर उनको ज्ञानपूर्वक समग्र क्रिया करते देख सागर मुनिने विचार किया, "सचमुच ये वृद्ध मुनि बुद्धिमान हैं।" फिर उन्होंने उनके शिष्योको वाचना देने समय बुद्धिके मदसे सूरिने कहा कि—"हे वृद्ध। मैं जो श्रुतस्कंध पढाता हूं उसे तुम सुनो।" जिसे सुन गुरू तो मौन ही रहे। फिर सागरमुनिने उनकी बुद्धिकी कुशलता बतानेके लिए अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिवालेसे ग्रहण हो सके ऐसी व्याख्याका विस्तार करने लगे। व्याख्याके रसमें तल्लीन होनेसे अकालवेलाको—अनध्यायके समयको भि न जान सके। "अहो! अज्ञान यह महान शत्रु है।"

इधर उज्जयिनी नगरीमें प्रातःकाल उक्त शिष्य उठा तो उसने जब गुरुको नही देखा तो वह अत्यन्त आकुल–

तक पड़ी हो तो [1]बारह वर्ष तक वाचनादिक स्वाध्याय अकल्पित है। परन्तु मनमे अर्थ विचारणाका किसी स्थान-पर निषेध नही किया गया है। आर्द्रा नक्षत्रसे लेकर स्वाति नक्षत्र तक विद्युत तथा मेघगर्जना हो तो स्वाध्यायका निषेध नही है। भूमिकंप हुआ हो तो आठ पहर तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। अग्निका उपद्रव हुआ हो तो वह उपद्रव रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। चन्द्रग्रहणमें उत्कृष्ट बारह पहर तक और सूर्यग्रहण ये उत्कृष्ट सोलह पहर तक अस्वाध्याय जाने। पाखीकी रात्रिको भी स्वाध्याय नही करना चाहिये।

आदि स्वाध्यायका स्वरूप संप्रदाय अनुसार जानकर स्वाध्याय करना चाहिये। क्योंकी अयोग्य कालमें पठन-पाठन करनेसे मूर्खपनकी प्राप्ति होती है। इसपर एक दृष्टान्त है कि-कोई साधु संध्या समयके पश्चात् कालिकसूत्रके पठनका समय निकल जानेपर भी उसके कालसे अनभिज्ञ होनेसे उसका परावर्तन किया करते थे। उसे देख किसी सम्यक् दृष्टि देवताने सोचा कि, मैं इनको समझादूं कि जिससे कोई मिथ्यादृष्टि देवता इनको छल न सके।" ऐसा सोच उसने महीयारीका रूप बना सिर पर छाछका मटका रख वह साधुके पास होकर आने जाने लगी और "छाश लो छाश" "ऐसा बारंबार उच्च स्वरसे बोलने लगी। जिस पर अत्यन्त

१ यहां बारह वर्षका जो अस्वाध्याय बतलाया गया है उसका परमार्थ बहु श्रुत गम्य है।

उद्वेगित हो उक्त साधुने कहा कि—"अरे ! क्या तेरे छाश वेचनेका यह समय है?" तब महीयारीने कहा कि, "अहो ! क्या तुम्हारेभी यह स्वाध्यायका समय है ।" यह सुन साधु को विस्मय हुआ और उपयोग द्वारा अकाल जाननेसे मिथ्या दुष्कृत लिया फिर "अयोग्य कालमें स्वाध्याय करनेसे मिथ्या दृष्टि देव छल देते हैं इसलिये ऐसा भविष्यमे कभी मत करना ।" इस प्रकार उस देवताने साधुको शिक्षा दी अतः योग्य समय पर ही स्वाध्याय करना उचित है ।

यथोक्त समय पर की हुई क्रियाये अवश्य फल देने वाली होती है । क्रियाये दो प्रकारकी हैं । एक प्रशस्त और दूसरी अप्रशस्त । इनमेसे सिद्धान्त मार्गमे कही सब क्रियाये प्रशस्त है और खेती, व्यौपार आदि अप्रशस्त हैं । चर्या— जाना आना और भाषण आदि सब क्रियायें समय पर करने परही सफल होती हैं । इसीलिये नीतिशास्त्रमें अकाल चर्याको श्रेष्ठ नहीं बतलाया गया हैं । कहा है किः—

अकालचर्या विषमा च गोष्टिः, कुमित्रसेवा न कदापि कार्या ।
पश्यांडजं पद्मवने प्रसुप्तं, धनुर्विमुक्तेन शरेण ताडितम् ॥१॥

भावार्थ :—"अकाल चर्या, विषम गोष्टि और कुमित्रकी सेवाये कभी नहीं करना चाहिये । देखिये नीच—संगतिसे —जीवनमें सोता हुआ हंस धनुपसे छोडे वाण द्वारा मारा गया" यह दृष्टान्त निम्न प्रकार है किः—

करने के विचार करने लगे कि नेपाल देश में रहनेवाले श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी का पता चलने से उनके बुलाने के लिए संघने दो मुनियों को भेजा। उन मुनियोंने वहां जा उन का वन्दना कर कहा कि, "हे स्वामी! आप को श्री संघ वहां चलने के लिये आज्ञा देता है।" यह सुन कर सूरिने कहा कि "मैंने महाप्राणायाम ध्यान आरंभ कर दिया है जो बारह वर्षमें पूर्ण होता है इसलिये मै इस समय वहां आनेमें असमर्थ हूं। महाप्राणायामके सिद्ध होनेपर यदि कोई कार्य आ उपस्थित हों तो चोदहपूर्व सूत्र तथा अर्थ एक मुहूर्त मात्रमें पढे जा सकते हैं।" यह सुन उन दोनों साधुओने वापस लौट सूरिके वचन श्री संघसे कह सुनाये। फिर श्री संघने अन्य दो साधुओंको बुलाकर आज्ञा दी कि, "तुम सूरिको जाकर कहना कि यदि कोई श्री संघकी आज्ञा न माने तो उसे क्या दंड देना चाहिये इसपर यदि सूरि यह कहे कि उसे संघके बाहर निकाल देना चाहिये तो तुम उच्च स्वरसे सूरिको ही कहना कि हे आचार्य महाराज आप स्वयं ही इस दण्डके भागी हैं।" इसपर उन दोनों मुनियोंने वहां जा उसीप्रकार सूरिसे कहा जिसपर सूरिने कहा कि, "पूज्य संघको ऐसा नही करना चाहिये परन्तु मेरे पर कृपाकर बुद्धिमान् साधुओंको यहां भेज देना चाहिये कि जिनको मैं सात वांचना (प्रवचन) सुनाउगा। उनमेंसे एक वाचना आहार लेकर आनेपर, तीन वाचनाये तीन वख्त के कालके समय और तीन वाचना सायंकालको प्रतिक्रमण

करने पश्चात् सुनाऊंगा जिससे संघका कार्य भी पूर्ण हो जायगा और मेरा कार्य भी पूर्ण हो जायगा।" यह सुन उन दोनों मुनियोंने वापस आ यह हाल श्री संघसे कह सुनाया जिसे सुन श्रीसंघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने स्थूलभद्र आदि पांचसो साधुओंको सूरिके पास भेजे, जिनको सूरि पढाने लगे जिनमेंसे स्थूलभद्रके अतिरिक्त अन्य सब साधु थोडीसी वाचनाके पढनेमें असंतुष्ट हो अपने अपने स्थानको लौट गये। स्थूलभद्रमुनि महा विद्वान थे इसलिये वे अकेले ही रह गये। उन्होंने आठ वर्षमें आठ पूर्वका अभ्यास किया। एकबार उनको अल्प वाचनासे उद्वेगित होते देख सूरिने कहा कि-"हे वत्स! मेरा ध्यान पूर्ण होनेवाला है उसके पश्चात् तुझे तेरी इच्छानुसार वाचना सुनाऊंगा।" स्थूलभद्रने पूछा कि, "हे स्वामी! अब मुझे कितना और पढना अवशेष है?" गुरुने उत्तर दिया कि-"बिन्दु जितना तो तू पढ चुका है और समुद्र जितना अवशेष है।" फिर महाप्राणध्यानके पूर्ण होनेपर दो वस्तु उन ऐसा दश पूर्वतक पढे कि उस समय उनकी बहिन तथा अन्य साध्वियें उनको वन्दना करनेके लिये वहां गई। उन्होंने प्रथम सूरिको वन्दना कर उनसे पूछा कि-"हे प्रभु! स्थूलभद्र कहां है?" सूरिने कहा कि, "छोटे देवकुलमें है" ऐसा सुन वे साध्वियें उस ओर चली। उनको आते देख स्थूलभद्रने आश्चर्य दिखानेके लिये उनके शरीरको बदलकर सिंहका रूप धारणकर लिया। वे साध्वियें सिंहका रूप देख भयभीत हो गये और उन्होंने

दियाकि-"देव गुरुके विनयसे श्रुतज्ञान प्राप्त होता है और श्रुत ज्ञानसे अन्य ज्ञान प्राप्त होते हैं। फिर ज्ञानसे क्या नहीं होता? सब कुछ हो सकता है।" आदि अपेक्षायुत वचन बोलनेसे सूरिने यह माना कि, "इसको अनंत अव्याबाध ज्ञान प्राप्त हो जाना जान पडता है।" फिरसे अपनी आत्माकी निन्दा करते हुए उसके चरणकमलमें गीर पडे। इसप्रकार चितमें शुभ भावना भाते हुए उन आचार्यने भी केवल ज्ञान प्राप्त किया। इसप्रकार उत्तम विनयवाले शिष्य उत्कट कोपवाले गुरुको भी मोक्ष दिलाने वाले होते हैं।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य अष्टपन्चाशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २५८ ॥]

व्याख्यान २५१

तीसरा बहुमान नामक ज्ञानाचार

विद्या फलप्रदा प्रायं, आगते बहुमानतः ।
तदाचारस्तृतीयोऽतो, विनयतोऽधिको मतः ॥१॥

भावार्थ :—"गुरु आदिका बहुमान करनेसे विद्या अवश्य फलदायक होती है इसलिये यह तीसरा आचार विनयसे भी अधिक माना गया है।"

विनय वन्दना, नमस्कार आदि बाह्याचारसे भी हो सकती है परन्तु बहुमान तो आन्तरिक प्रीतिसे ही होता है। बहुमान होनेपर ही गुरु आदिकी इच्छाका अनुसरण, गुण ग्रहण, दोषका आच्छादन तथा अभयदानका चिन्तन करना आदि हो सकता है। श्रुतके अर्थीको तो गुरु आदिका बहुमान अवश्य करना चाहिये उसके विना महान् विनयसे ग्रहण की हुई विद्या भी फलदायक नहीं होती है। इसके विषयमें गौतमपृच्छामें कहा गया है कि :—

विज्जा विन्नाणं वा, मिच्छा विणएण गिण्हिउं जोउं ।
अवमन्नइ आयरिअ, सा विज्जा निष्फला तस्स ॥१॥

है, वह भी दाहिनी आंखसे काणी है और उस पर कोई रानी बैठी हुई है, वह सधवा है और गर्भवति भी है; उसको आजकल मे ही प्रसूति समय है जिसमें भी वह पुत्र प्रसव करेगी" यह सुनकर दूसरे ने कहाकि—"ऐसा बिना देखा असंबन्ध क्यों बोलता है।" तब उसने कहाकि, "ज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है, इस बातकी तुम्हें आगे जाने पर प्रतिती हो जायगी।" फिर वे दोनों कुछ दूर आगे बढ़े तो उन्होंने उसी प्रकार सब कुछ देखा। उसी समय किसी दासीने राजा के पास आकर कहा—"हे राजन्! राणीने पुत्र प्रसव किया है जिसकी मैं आपको बधाई देती हूँ!" यह सुनकर उत्तम शिष्यने दूसरे से कहा कि—"इस दासीके वचन सुना" दूसरे ने कहाकि तेरा ज्ञान सत्य है। फिर वे नदी किनारे गये जहां कोई वृद्धा स्त्री जलभरनेको आई हुईथी जिसने शिष्यों से उनको निमित्त जानकर पूछा कि—"मेरा पुत्र देशान्तर गया हुआ है वह वहां से वापस कब लौटेगा?" ऐसा कहते ही उसके सिर से घड़ा गिरकर फूट गया! यह सुनकर [illegible] शिष्य एकदम बोल उठा कि—"तेरा पुत्र मर गया है।" फिर दूसरे शिष्य ने कहाकि "हे माई! [illegible] [illegible]

उसने दो वस्त्र तथा कुछ रुपये उस सत्यवादी को दिये। जिसे देख दूसरे ने खेदित होकर विचार किया कि—"सच-मुच गुरु ने मुझे अच्छी तरह नहीं पढ़ाया है यदि ऐसा न हो तो जिस बातको मैं नहीं जानता हूँ से यह कैसे जान सकता है? अतः इसमें मात्र गुरु का ही दोष है।" फिर ये गुरुके पास गये। इनमेंसे प्रथम सुज्ञ शिष्यने गुरुके दर्शन होते ही मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बहुमानपूर्वक आनन्दके आंसुओंसे नेत्र भर गुरुके चरणकमलोंमें मस्तक रख कर नमस्कार किया और दूसरा शिष्य तो पत्थरके स्तंभ सदृश लेशमात्र भी शरीरको हिलाये बिना खड़ा ही रहा। तब गुरुने उससे कहा कि—"अरे! पैरोंमें क्यों नहीं गिरता?" उसने उत्तर दिया कि, "आपके जैसे भी यदि अपने शिष्योंमें जब इसप्रकार भिन्नता रक्खे तब फिर किसको दोष दिया जावे? जब चन्द्रमा से ही अंगारोंकी वृष्टि होने लगे तब किससे कहा जाय?" यह सुनकर गुरुने कहा कि, "ऐसे कैसे बोलते हो? मैंने कभी भी विद्या सिखानेमें या उसकी आम्नाय कहने आदिमें तेरे साथ कोई कसुर नहीं रक्खी, शिष्यने कहा कि, "यदि ऐसा हो तो मार्गमें हस्तीनी आदिका स्वरुप इसने उत्तम रीतिसे क्योंकर जान लिया और मैंने कुछ भी किसी प्रकार क्यों नहीं जाना?" यह सुनकर गुरुने उक्त दूसरे शिष्यसे पूछा कि—"हे वत्स! तूने कैसे जाना सो बतला?" तब उसने कहा कि "आपकी कृपासे मैंने विचार करना आरंभ किया कि ये किसी हाथीके जैसे

पैर तो निसानीसे जाने जा सकते हैं परन्तु क्या ये हाथीके पैर-चिन्ह हैं कि किसी हथनिके ?" इसप्रकार विशेप विचार करनेपर मैंने उसकी लघुनीतिसे यह निश्चय किया कि यह हथनि है । मार्गमें दाइ ओरकी वेले हथनिसे तोड़ी हुई थी और बाई ओर की तोडी हुई नहीं थी इससे मैंने निश्चय किया कि वह हथनि "बाई आंखसे कानी होनी चाहिये।" फिर "हथनी पर आरुढ होकर ऐसे परिवार सहित राजा या उसका कोई अंगत व्यक्ति ही होने चाहिये।" ऐसा निश्चय किया । फिर उसने किसी स्थान पर हथणिसे उतर कर शरीर चिंता की थी । उसे देखकर मैंने निश्चय कर किया कि "वह पति वाली है" और वह जहां पेशाब करने बैठी थी वहांसे पृथ्वीपर हाथ रखकर उठी थी जिसे देखकर मैंने निश्चय किया कि "वह गर्भवती है ।" वहांसे चलते समय रानीने प्रथम दाहिना पैर रक्खा था इससे मैंने जाना कि "उसके गर्भमें पुत्र है ।" और उसकी चाल अत्यन्त मन्द थी इससे यह निश्चय किया कि "प्रसवकाल समीप ही है ।" अपितु हे स्वामी ! उक्त वृद्ध स्त्रीने जब उसके पुत्रके विपयमें प्रश्न किया था तब तुरन्त ही उसके मस्तकसे घड़ा गिर पडा जिससे मैंने ऐसा विचार किया कि-"जैसे यह घड़ा जहांसे उत्पन्न हुआ था उसीमें मिल गया इससे इसका पुत्र भी जो घरपर ही उत्पन्न हुआ था उस घर पर ही लौट आया होगा" इसप्रकार उसकी अनुपम बुद्धिसे हर्पित होकर गुरुने दूसरे शिष्यसे कहा कि, "हे शिष्य ! तूने मेरे प्रति

विविध प्रकारकी विनयकी परन्तु इस हृदय तक बहुमान नहीं किया और इसने भलीभांति बहुमान किया और वैनयिकी बुद्धि बहुमान सहित विनय होनेपर ही फुरायमान होती है अतः इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।" इसप्रकार विनय होने पर भी बहुमान और अबहुमानका तारतम्य जानना चाहिये।

अब विनय और बहुमान इन दोनोंसे युक्त श्रीकुमार-पाल राजाका दृष्टान्त निम्न प्रकार है :-

श्री पाटण नगरमें कुमारपाल राजा राज्य करते थे। वे जिनेन्द्र कथित आगमकी आराधना करनेमें तत्पर थे इसलिये उन्होंनें ज्ञानके इक्कीस भंडार खोले थे। अपितु त्रेसठ शलाका पुरुष के चरित्र सुननेकी इच्छा होनेसे उन्होंने श्री हेमचन्द्राचार्य गुरुसे प्रार्थना कर ३६००० श्लोक के श्री त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रकी रचना कराई। उस चरित्र को सुवर्ण तथा रुपाके अक्षरोंसे लिखवाकर, रंगमहलमें ले जाकर, वहां रात्रि जागरण कर, प्रातःकाल वह हस्ती पर उस चरित्र के पुस्तक को पधरा उस पर अनेक छत्र धारण करा, सुवर्ण के दंड वाले बहत्तर चामर दुलाते हुए बडे उत्सव पूर्वक उपाश्रय ले गये। वहां उसकी सुवर्ण, रत्न, पट्टकूल आदि से पूजा कर बहत्तर सामंत राजाओं सहित विधि पूर्वक गुरु के पास उसका व्याख्यान सुना। इसी प्रकार ग्यारह अंग और बारह उपांग आदि सिद्धान्तों की एक एक प्रत सुवर्ण आदि के अक्षरोंसे लिखा कर गुरु

के मुंहसे उनका व्याख्यान सुना। तथा योगशास्त्र और वीतराग स्तवन के मिलाकर बतीस प्रकाश सुवर्ण के अक्षरों से हाथपोथी के लिए लिखाकर सदैव मौन धारण कर एक समय उसका पाठ करने लगा। उस पुस्तकको प्रतिदिन देव पूजाके समय पूजा करने लगा। उसी प्रकार "गुरू कृत सर्व ग्रंथ मैं अवश्य लिखवाउंगा" एसा अभिग्रह ले उसने सातसो लेखकों के लिखने बैठाया। एक वार प्रातः काल गुरूको तथा प्रत्येक साधुको विधि पूर्वक वन्दना कर राजा लेखशाला देखने गया। वहां लेखकों के कागज के पानेमें लिखते देख कर राजाने गुरु से उसका कारण पूछा। तब गुरूने कहा कि–"हे चौलुक्य देव! आजकल ज्ञान भंडारमें ताड़ पत्रकी बहुत कमी है इसलिये कागजके पन्नों पर ग्रंथ लिखे जाते हैं।" यह सुन राजा लज्जित हुआ और मनमें विचारने लगा कि, "अहो! नये ग्रन्थ के रचनेमें गुरुकी अखंड शक्ति है और मुझमें उन ग्रंथों के लिखवाने की भी शक्ति नहीं है तो फिर मेरा श्रावकपन क्या है?" यह सोचकर उसने खड़ा होकर कहा कि, "हे गुरू! उपवासका प्रत्याख्यान कराइये।" यह सुन कर गुरुने पूछा कि "आज उपवास किस बातका है?" तब राजाने कहा कि, "अबसे जब ताड़ पत्र पूरे होगें तबहि मैं भोजन करुंगा।" यह सुन कर गुरुने कहा कि–"श्री ताडके वृक्ष यहांसे बहुत दूर हैं इसलिये वे जल्दी कसे मिल सकेगें?" इस प्रकार गुरू तथा सामंतों आदिने बहुत मान सहित उनको

बहुत कुछ रोका परन्तु उन्होंने तो फिर भी उपवास करही लिया । श्री संघने उनकी स्तुतिकी कि :-

अहो जिनागमे भक्तिरहो गुरुषु गौरवम् ।
श्रीकुमारमहीभर्तुरहो निःसीमसाहसम् ॥१॥

भावार्थ :-"अहो ! श्रीकुमारपाल राजाकी जिनागम के विषयमें कैसी भक्ति है ? उसीप्रकार अहो ! गुरुके विषयमें उसका बहुमानपन भी कितना उच्च कोटिका है ? और अहो ! उसका साहस भी निःसीम है ।"

फिर श्री कुमारपाल राजाने उनके महलके उपवनमें जाकर वहां लगे हुए [1]खरताड वृक्षोंकी चन्दन, कपूर आदिसे पूजाकर मानो स्वयं मंत्र सिद्ध हो वैसे कहने लगे कि :-

स्वात्मनीव मते जैने, यदि मे सादरं मनः ।
यूयं व्रजत सर्वेऽपि, श्रीताडद्रुमतां तदा ॥१॥
कथयित्वेति गांगेयमयं ग्रैवेयकं नृपः ।
कस्याप्येकस्य तालस्य, स्कन्धदेशेन्यवीविशत् ॥२॥
तस्थौ च सौधमागत्य धर्मध्यानपरो नृपः ।
श्रीताडद्रुमतां तांश्च निन्ये शासनदेवता ॥३॥

भावार्थ:—'हे खरताड के वृक्षो । यदि मेरा मन अपनी आत्मा के समान जैनमत का आदर करने वाला हो

1. ताड़के वृक्ष दो प्रकारके होते हैं । श्रीताड और खरताड जिनमेंसे श्रीताडके पत्र पुस्तक लिखनेके कार्यमें आते है ।

तो तुम सब श्रीताड़ के घृक्ष हो जाओ। २ ऐसा कहकर राजा ने किसी एक खरताड़ के घृक्ष के स्कंध प्रदेश पर अपना सुवर्णहार रखा- २ फिर ऐसा कर राजा महल में आ धर्मध्यान में तत्पर हो गया कि जिससे शासन देवताने उन खरताड के घृक्षों को श्रीताड़ के वृक्ष बनादिये ॥३॥

प्रातःकाल उपवन के रक्षकोने आकर यह घृतान्त राजा से निवेदन किया। जिसपर राजाने उनको इनाम दे प्रसन्न किया। फिर उनके पत्र ले गुरू के, समक्ष रख उन्होने उनसे वन्दनाकी गुरुने जव पूछा कि "ये कहां से आये।" तव राजाने विनय पूर्वक सव सभासदों को आश्चर्य मे डालने वाला वह सव घृतान्त कह सुनाया। फिर हेमचंद्राचार्य कर्णको अमृत समान लगनेवाला वह घृतान्त सुनकर राजा सभासद सहित उस उपवन मे गये! वहां राजाके कथनानुसार पूर्व मे जैसा नही सुना था वैसा आज अपनी नझर से देखा। उस समय ब्राह्मण तथा देववोधा (वौधाचार्य) आदि नगरके लोगों भी खरताड के घृक्षोको भी ताडके घृक्ष हुए देख विस्मय एवं आश्चर्यको प्राप्त हो गये। उस समय श्रीहेमचन्द्रार्यने जैनमतकी प्रशंसा करने के लिये इस प्रकार कहा कि:—

अस्त्येवातिशयो महान् भुवनविद्धर्मस्य धर्मान्तरा-
द्यच्छक्त्यात्र युगेऽपि ताडतरवः श्रीताडमागताः।
श्रीखंडस्य न सौरभं यदि भवेदन्यद्रुतः पुष्कलं
तद्योगेन तदा कथं सुरभितां दुर्गन्धयः प्राप्नुयुः ॥१॥

और अनुपधान आदि ज्ञान संबन्धी आठ प्रकारके अनाचारोंमें उपधानका वहन नहीं करने रूप अनाचार बडे दोषवाला है। जो उपधान वहन तथा योगविधिको नहीं मानते उनको पूर्वाचार्य सूत्रके वाक्य बतलाते हैं ।

श्री उत्तराध्ययन के चोवीस वे अध्ययनमें तथा श्री समवायांग सूत्रमें ३२ वें समवायमें, योगसंग्रहमे तीसरे योगमें इस विषयमें स्पष्ट लिखा गया है । इच्छुकों वहांसे पढ लेना चाहिये ।

यहां पर यदि किसी को यह शंका हो कि योग अर्थात् मन, वचन और काया के जो योग हैं उन्हें यहां जानना चाहिये ।" इसके उत्तरमें कहा गया है कि–यदि "योग" शब्दका इस प्रकार मूल अर्थ लिया जाये तो फिर "वहन" शब्दका क्या अर्थ करें ? अतः योग और वहन इन दोनों शब्दोंका समानाधिकरण अर्थ करना ही योग्य है । श्री स्थानांग सूत्र के तीसरे ठाणेमें कहा है कि–"साधु तीन स्थानक से सम्पन्न होनेसे अनादि अनन्त चार गतिरूप संसारकांतारका उल्लंघन करते हैं । वह इस प्रकार है कि–१ नियाणा न करनेसे, २ [1]दृष्टिसंपन्न पनसे और ३ योग वहन करनेसे । अपितु उसके दशवें ठाणेमें कहा है कि–" जीवको दश स्थानकसे भविष्यमे शुभ तथा भद्रिक परिणामको प्राप्त होते हैं । वह इस प्रकार–१ नियाणा न

---

१ सम्यक्दृष्टिसे

करनेसे, २ दृष्टि संपन्नसे ३ योगवहन करनेसे, ४ क्षमागुण धारण करनेसे, आदि ।

अपितु सब योगोद्वहन विधिके रहस्य भूत तीसरे अनुयोग द्वारमें कहा गया है कि–मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यव और केवल ये पांच प्रकार के ज्ञान हैं । इनमेसे चार ज्ञान स्थापनासे स्थापने योग्य हैं । उन चार ज्ञानोंके उद्देश, समुद्देश, और अनुज्ञा नही हैं और श्रुतज्ञान के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा तथा अनुयोग आदि हैं । तथा योगविधि भगवती सूत्र के अन्तिम भागमें कही गई है । उसी प्रकार नंदीसूत्रमें श्रुत के उद्देश, और समुद्देश के काल बतलाये गये हैं । श्री आचारांग में कहा है कि–" ग्यारह अंगोंमेसे पहले अंगमें दो श्रुत स्कंध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं और पचास उद्देश काल है आदि ।" यहां काल शब्दसे कालग्रहण की विधि जाने क्योंकि उत्तराध्ययन के छब्बीसवें अध्ययनमें कहा गया है कि–"चार काल ग्रहण हैं जो योगविधि में ही योग्य हैं ।"

यहां पर यदि कोई श्रावकोंको उपधान विधिका तथा साधुओंको योग विधिका निषेध कर "सबको श्रुतका अभ्यास सर्वदा करना चाहिये" ऐसा उपदेश करते है तो वह योग्य नहीं है क्यों कि इसमें तीर्थंकर की आशातना होती है अपितु श्रावक को आचारांग आदि सूत्रों को पढ़ना भी सूत्रमें निषेध किया गया है । इस विषयमें सातवें अंगमें कहा गया है कि,—" कामदेव नामक श्रावक की [illegible]

समवसरणमें गया था । उस समय श्रीवीर भगवंतने सभा समक्ष उसे रात्रिमें हुए तीन उपसर्ग कह बतलाये । फिर श्रमण भगवान् महावीरने अनेकों साधु और साध्वियोंको सम्बोध कर कहा कि–"हे आर्यो ! जब श्रमणोपासक (श्रावक) गृहस्थी घरमें रहते हुए भी देव, मनुष्य और तिर्यंच द्वारा किये उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करते हैं तो फिर द्वादशांगी के अभ्यासी ऐसे निर्गंथको तो देव, मनुष्य और तिर्यंच द्वारा किये उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करना ही चाहिये ।" यहां सूत्रके आलावेमें साधुओंको ही द्वादशांगीके धारण करने वाले कहा गया है परन्तु श्रावकोंको नही कहा गया है तथा पांचवें अंगमें कहा है कि–"वहां तुंगीया नामक नगरीमें अनेकों श्रावक रहते हैं । वे ऋद्धिवाले हैं, यावत् कोई भी पराभव नहीं पावे वैसे जीव अजीवादि नव तत्वको जानने वाले, निर्ग्रंथ प्रवचन जो जैन सिद्धान्त हैं उनमें निःशंक, (श्रुतके) अर्थको प्राप्त किये हुए और अर्थको ग्रहण करनेवाले, (भोजन समय) घरके द्वार खुले रखनेवाले तथा पर घरमें प्रवेश नहीं करनेवाले हैं ।" आदि । इसप्रकार श्रावकका वर्णन श्री उपासगदशांग, उववाइ तथा स्थानांग आदिसे भी जान लेवे । परन्तु यह सर्व स्थानपर श्रावकोंको "लद्धट्ठा" (श्रुतके अर्थको प्राप्त किये हुए) ऐसा विशेषण कहा गया है, परन्तु किसी सूत्रमें "लद्धसूता"–(सूत्रको प्राप्त) ऐसा नहीं कहा गया है । अपितु सर्वत्र सिद्धान्तोंको (निर्ग्रंथ वचन) अर्थात् मुनि सम्बन्धि 'शास्त्र' ऐसा कहा है । परन्तु श्रावक

ईस विषयमे श्री स्थानांग सूत्रमे कहा है कि–"तीन व्यक्ति वाचनाके अयोग्य है १ विनय रहित, २ विगइ काममे लेनेमे आशक्त और ३ क्रौधयुक्त चित्तवाले; तथा तीन व्यक्ति वाचनाके योग्य हैं १ विनयी २ विगइमे अनाशक्त और ३ जिन्होंने क्रोधका त्याग कर दिया हो वे । तथा अठाइस अस्वाध्याय काल कहे गये हैं । जिनमे साधुसाध्विके श्रुत पढनेका निषेध किया गया है उस स्थानपर श्रावक का ग्रहण नही किया गया है । इस विषयमे श्री स्थानांगसूत्रमे कहा गया है कि– "साधुसाध्विको चार महापड़वाके [1]दिन स्वाध्याय करना अकल्पित है । इनमे आषाढ मासकी पड़वा, २ कार्तिक मासकी पड़वा, ३ फाल्गुन मासकी पड़वा, ४ आसोज मासकी पड़वा तथा चार संध्या समये स्वाध्याय करना अकल्पनीय है । इनमे १ प्रातःकाल, २ सायंकाल, ३ मध्यान्ह काल और ४ मध्यरात्रि तथा दस प्रकारकी अंतरिक्ष सज्झाय कही गई है और दस प्रकारकी औदारिक असज्झाय कही गई है इसप्रकार सब मिलाकर २८ प्रकारकी असज्झाय कही गई है आदि सब जानकर साधुओंको ही अस्वाध्यायमे श्रुत नहीं पढना चाहिये ऐसा कहा गया है परन्तु वहां श्रावकका ग्रहण नही किया गया है । अपितु श्री निशीथ सूत्रमे श्रावकोको वाचना देनेवाले साधुके लिए प्रायश्चित कहा गया है । वह इसप्रकार कि—"जो साधु अन्य तीर्थिको अथवा गृहस्थ श्रावकको वाचना दे उसे प्रायश्चित लगता है ।"

---

१ पड़वा से वदि १ को समझना ।

आलस्य आदि नही करना चाहिये।" ऐसा हीर प्रश्नमें कहा गया है। घरके काम काजमें अत्यन्त व्यग्र रहनेसे अथवा प्रमाद आदिसे जो उपधान वहन नहीं करते, उनका नवकार गिनना, देवदर्शन करना, इर्यावही पड़िकमवा, तथा प्रतिक्रमण करना आदि सम्पूर्ण जन्ममे भी कदापि भी शुद्ध (निर्दोष) नहीं होते। और भवान्तरमें भी उनको उस क्रियाका लाभ मिलना असंभवित जान पड़ता है। ईसलिये क्रियाकी शुद्धि को चाहनेवाले श्रावकोंको छ उपधान अवश्य वहन करने चाहिये जिससे सर्व सुखकी प्राप्ति हो सके।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ नवदशस्तंभस्य षष्टयधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२६०॥]

व्याख्यान २६१

योग का बहुमान

योगक्रियां विना साधुः सूत्रं पठेन्न पाठयेत् ।
दुष्कर्माणि विलीयन्ते, श्रुतदेवी वरदा सदा ॥१॥

भावार्थ :-योग वहन किये विना साधुको न तो सूत्र पढना न पढाना चाहिये क्योंकि योग वहन करनेसे दुष्कर्म का नाश हो जाता है और शासन देवता सदैव वरदान देनेवाला होता है ।"

पाटलीपुरमे दो व्योपारी भाई रहते थे । वे एक दिन गुरुके पास धर्मोपदेश सुनने को गये । वहां "धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" आदि देशना सुनकर वैराग्य हो जानेसे उन्होने चरित्र ग्रहण कर लिया । उनमेसे एक भाई क्षयोपशमके वशसे बहुश्रुत हुआ जिसको गुरूने योग्य जानकर सुरि पद दिया । इससे वे पांचसो साधुओं के स्वामी हुए । सब साधुओंको वें वाचना देते थे । वे साधु जब जब उन्हें सन्देह होता बार बार जाकर प्रश्न करते रहते थे जिससे रात्रिमें भी सूरिको निद्रा लेनेका अवकाश न मिलता था । ऐसा होनेसे ज्ञानावरणीय कर्मके उदयके योगसे उनको विचार हुआ कि-"मुझ शास्त्रके पारंगतको धिक्कार है कि मैं

एक क्षणभर भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। और मेरे भाई को धन्य है कि जिससे वह निश्चिन्त होकर सो रहता है।' ऐसा विचार कर "मूर्खत्वं हि सुखे ममापि रुचितं" इस श्लोक का स्मरण कर "अब मैं इस वेश का त्याग करूं इस प्रकार मनमे विचार करता रहता है। तदन्तर जब साधु आहार ग्रहण करने आदि कार्य के लिए बाहर गये हुए थे तब सूरिने विचार किया के-" अहो! कई दिन पश्चात् आजकल अवकाश मिला है अतःयहांसे निकल कर मेरी मन-वांछित सिद्धि करूं।" ऐसा विचार कर सूरि नगरसे निकल बाहर चल दिये। नगर के बाहार जाते हुए उन्होंने कौमुदि के महोत्सवमें एक स्तंभ देखा। उस स्तंभ को विविध आभूषणोंसे सजा हुआ था और उसके आसपास बैठकर कोई मनुष्य संगीत कर रहे थे। फिर महोत्सव समाप्त होने पर उसी स्तंभको शोभा रहित तथा कौओ आदि पक्षियों घिरा हुआ देखा। उसे देख सूरिने विचार किया कि- "इस स्तंभ को जब मनुष्योंने शणगारा था और सब इसको घेरे हुए थे तब इसकी अत्यन्त शोभा थी परन्तु अब इसकी कोई शोभा नहीं है इसलिये मनुष्य परिवार युक्त की ही शोभा होती है अकेले की शोभा नहीं होती। तो फिर परिवार से और जैन धर्म से च्युत हो स्वेच्छा से विचरण करने के अभिलाषी मेरे मूढ को धिक्कार है।" ऐसा विचार करके सूरि वापस अपने उपाश्रय में लौट आये और अपने मन से ही उसकी आलोचना (प्रायश्चित्त) की।

फिर भी दुष्ट ध्यान करने से उन्होने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा वह निर्मूल नहीं हुआ था। फिर उन्होने निर्मल चारित्र पाल और आयुष्य के अन्त में मर कर स्वर्ग सिधारे।

स्वर्गसे चव कर वे आमीर (रवारी) के पुत्र हुए। अनुक्रमसे जब वह आभीर पुत्र युवा हुआ तो उसके बापने उसका एक कन्याके साथ विवाह कर दिया जिसको एक पुत्री हुई। वह स्वरूपमे अत्यन्त सौन्दर्यवान थी। एक वार कई आमीर घीरत के गाडे भर कर दूसरे गांव वेचनेको निकले। उस समय यह रवारी भी घीका गाड़ा भर उसकी पुत्रीको गाड़ी हांकनेके लिये उस पर वैठा कर उनके साथ चल दिया। मार्गमे जाते हुए अन्य गाडेवाले इस कन्याको देखकर उस पर मोहित हो गये। उनके मन व्यग्र होनेसे वे विपरीत मार्गसे इधर उधर रास्ता छोड़ कर गाडिये चलाने लगे। जिससे उनके गाडे टूट गये। यह वृतान्त जानकर उक्त कन्या के बापने विचार किया कि—

"इस संसारकी प्रवृत्तिको धिक्कार है! सब जीव ऐसे असार और मल, मूत्र तथा पुरुषके पात्ररूप स्त्रीके शरीरके विषयमे कामान्ध होकर अपने हित साधनमे भी निरपेक्ष हो मोह को प्राप्त हो जाते हैं।" इस प्रकार अशुच्यादि भावना भाते हुए उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर ग्रामान्तरमे घी वेचकर वह अपने घर लौट आया। वहां उसकी पुत्रीको योग्य स्थानमे परणाकर उसने सद्गुरुके समीप दीक्षा

ग्रहण की। अनुक्रम से आवश्यक आदि का योगवहन कर उत्तराध्ययनका योग वहन करते हुए उसने तीन अध्ययन पूर्ण किये। फिर पूर्व संचित ज्ञानावरणीकर्मका उदय होनेसे उसके बहुत प्रयास करने परभी श्री उत्तराध्ययनके चोथे असंख्येय अध्ययनका एक अक्षर भी न पढ़ सका जिससे उसने गुरूसे कहा कि-" यह नहीं आता है" तब गुरूने कहा कि-" हे मुनि! तुम आंबिल तप करो और "मा रुस मा तुस रोष न करो, तोष न करो।" इसप्रकार रागद्वेषके निग्रह करनेका रहस्यवाला पद याद करते रहो।" इस बातको स्वीकार कर 'मुझे दूसरा पाठ पढनेसे छुट्टी मिली' ऐसा मानकर उस मुनिने दूसरा पाठ नही पढा।" और उस वह ही पद उच्च स्वरसे बोलने लगा फिरभी वह पद कंठस्थ नहीं हुआ और अस्पष्ट (मासतुस, मासतुस) ऐसा उच्चारण होनेसे लोग हंसने लगे। उसे देख मुनि क्षमा धारणकर उल्टा उसके कर्मोंकी ही निन्दा करने लगा। इसीप्रकार "हे जीव! तू रोष मत कर और तोष मत कर" इसप्रकार सर्व सिद्धान्तके सारभूत उसी पदको बोलने लगा। लोगोंने उसका नाम मासतुस रक्खा। इसप्रकार अपनी निन्दा व आत्मनिन्दा करते हुए उस मुनिने बारह वर्ष व्यतीत किये। बारह वर्षके अन्तमें उसी पदका उच्चारण करते हुए उस मुनिने शुभ ध्यानद्वारा [illegible] पर आरूढ़ होकर समस्त लोकालोक प्रकाश करने वाले केवल [illegible] प्राप्त किया। देवोंने केवलज्ञानकी महिमा की।

सके पश्चात पृथ्वी पर विहार करते हुए मासतुस केवलीने अनेकों जीवों को प्रतिबोधित कर अनन्त चतुष्कमय शाश्वत स्थानको (मोक्षको) प्राप्त किया।

इस प्रकार मासतुस साधुने शुभ भावना द्वारा सब पापोंका क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर शाश्वत पदको प्राप्त किया।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृतौ नवदशस्तंभस्य एकषष्ठ्यधिकद्विशततमः प्रबंधः] ॥२६१॥

परठश कर विचार किया कि,—अहो! इस अविरति देवको हमने बहुत समय तक वन्दना की है इसलिये इसप्रकार अन्य स्थान पर भी शंका रखनी चाहिये। क्योंकि कौन संयमी है और कौन असंयमी देवता है, इसे कौन जानता है? इसलिये किसीको भी वन्दना नहीं करना यह ही श्रेयः रास्ता जान पड़ता है। अन्यथा असंयमीकी वन्दना और मृषावादका दोष लगता है।" इसप्रकारके भारी कर्मके उदयसे उन मिथ्या परिणामकी बुद्धिवाले साधुओंने अव्यक्तवादको अंगीकार कर परस्पर वन्दन क्रियाको छोड दिया। अन्य स्थविर साधुओंने उन्हें शिक्षा दी कि—"यदि तुमको अन्य सब पर सन्देह है तो जिसने तुमको कहा कि "मैं देव हूं" उस पर तुमको यह सन्देह क्यों नहीं हुआ कि वह देव है या कि अदेव?"

वादी—उसने स्वयं ही कहा था कि "मैं देव हूं" तथा देवका रुप भी हमने प्रत्यक्ष देखा था इससे स्नेह नहीं रहा।

प्रतिवादी—यदि ऐसा है तो जो ऐसा कहते हैं कि "हम साधु है" तथा साधुका रूप भी तुम प्रत्यक्ष देखते हो तो फिर उनके सम्बन्धमें साधुपनका क्या सन्देह है कि जिससे तुम परस्पर वन्दना नहीं करते? अपितु "साधुके बनिस्बत देवका वाक्य अधिक सत्य होता है।" ऐसा भी तुमको नहीं समझना चाहिये। क्योंकि देवतो क्रीड़ा आदिके कारणसे भी असत्य बोले जाते हैं परन्तु साधु तो वैसे

असत्यसे भी विरमेले होनेसे असत्य नहीं बोलते हैं। अपितु जो प्रत्यक्ष यतिके विषयमें भी आपको शंका है तो फिर परोक्ष ऐसे जीवाजीवादि पदार्थोंके विषयमें तो बहुत ही शंका होनी चाहिये। अपितु यतिवेश वाले मनुष्यमें साधुपन है या नहीं ऐसा जो तुमको सन्देह होता है तो प्रतिमाके विषयमें निश्चयसे ही जिनपन नहीं हैं फिर उसकी वन्दना क्यों की जाये और साधुकी वन्दनाका निषेध कैसे किया जाये?

वादी—असंयमी देवताद्वारा प्रवेश किये यतिवेषको वांदनेसे उसमे स्थित असंयमरुप पापकी अनुमति हो जाती है तो वह दोष प्रतिमामें तो नहो आ सकता।

प्रतिवादि—देवताओं द्वारा अधिष्टितकी प्रतिमाके विषयमें भी अनुमतिरुप दोष रहता ही है।

वादी—शुद्ध अध्यवसाय वाला पुरूष जिनेश्वरकी बुद्धिसे प्रतिमाको वन्दन करता है इसलिये वह दोष प्रतिमाके विषयमें नहीं लगता।

प्रतिवादि—यदि ऐसा हो तो शुद्ध अध्यवसाय वालेको यतिबुद्धिसे यतिरूपको वन्दना करनेमें क्या दोष है कि जिससे तुम परस्पर वन्दना नहीं करते?

वादी—तब तो विशुद्ध परिणामवाला लिंगमात्रको धारण करनेवाले पार्श्वस्थादिकको भी यतिबुद्धिसे नमस्कार करे तो उसको दोष नही लगता ऐसा समझना चाहिये।

प्रतिवादी—तेरा कहना अयुक्त है क्योंकि पार्श्वस्थादिकमें सम्यक् निर्ग्रंथपनका अभाव है । आहारविहार आदि द्वारा उनको निर्ग्रंथलिंगकी प्राप्ति नहीं देखी जाती इसलिये यदि प्रत्यक्ष दोषवाले पार्श्वस्थादिककी वन्दना की जाये तो सावद्यानुज्ञाका दोष लगता है । कहा भी है कि :—

जह वेलंबगलिंगं, जाणत्तस्स नमउ हवइ दोसो ।
निद्धंधसं पि नाऊण, वंदमाणे धुवो दोसो ॥१॥

भावार्थ :-" जैसे भांड-भवाय विदुपकद्वारा किये वेशको जानता हुआ भी उसे वन्दना करे तो उसे दोष लगता है उसीप्रकार जिसमें निध्वंसपन वर्तता है ऐसे वेषधारी मुनिको जानते हुए यदि वन्दना की जाती है तो अवश्य दोष लगता है ।

अपितु यदि तुम प्रतिमाको वन्दना न करो तो तुम्हारे सर्वत्र शंका ही रहती है । इससे आहार, उपधि, शय्या भी देवताके विकुर्वित होंगे या नहीं इसका निश्चय न होनेसे उन आहारादिकको भी तुम्हें ग्रहण न करना चाहिये । इस प्रकार अतिशंका रखनेसे समग्र व्यवहारका उच्छेद हो जायगा। क्योंकि निश्चयकारी ज्ञानके विना यह कौन जान सकता है ? कि यह भक्त है या कीडा है ? वस्त्रादिकमें माणिक्य है कि सर्प है ? आदि सब स्थानोंमें भ्रान्ति ही रहेगी और खानपान आदि कुछ भी काममें नहीं लाया जा सकेगा अथवा जैसे आर्य आषाढ देवद्वारा धारण किया यतिरूप तुमने देखा है वैसे अन्य कितने देवोंको यतिरूपमें तुमने पूर्वमें देखा था कि जिससे इस एक ही दृष्टान्तसे तुम सर्वत्र शंकाशील

हो गये हो? किसी समय किसी आश्चर्यादिकके कारण किसी स्थानपर किसी देवादिकमें इसप्रकार देखकर सब स्थानपर ऐसी शंका करना योग्य नहीं है इसलिये व्यवहार नयका आश्रय लेकर तुम्हे एक दूसरेको वन्दना करना युक्त है। क्योंकि छद्मस्थको सर्व प्रवृत्ति व्यवहारसे ही करनी पड़ती है। व्यवहारका उच्छेद करनेसे तीर्थका उच्छेदका प्रसंग आ उपस्थित होता है। सर्वज्ञ भी व्यवहार मार्गका लोप नहीं करते। इस विषय पर महाभाष्यमें श्री जिनभद्रगणिने कहा है कि:—

संववहारो चि बली, जमसुद्धं पि गहियं सुयविहिए।
कोवेइ न सव्वण्णु, वदइय कयाई छउमत्थ[१] ॥१॥

भावार्थ :—"श्रुत व्यवहार भी बलवान् है इससे श्रुतविधि प्रमाणसे छद्मस्थ द्वारा ग्रहण किये शुद्ध भी केवलीकी बुद्धिसे अशुद्ध आहारको भी सर्वज्ञ दूषित नहीं करते (उपयोगमें लेते है) और उसके विषयमें कुछ नहीं कहते अर्थात् उसको प्रमाण करते है।"

आदि युक्तियों द्वारा उन स्थविर साधुने उनको समझाया फिर भी उन्होंने उनका आग्रह नहीं छोड़ा तब उन स्थविर साधुओंने उन्हें कायोत्सर्गपूर्वक गच्छके बाहर कर दिये।

वे फिरते फिरते बादमें राजगृह नगरीमें पहुंचे जहां मौर्यवंशी बलभद्र नामक राजा राज्य करता था। वह शुद्ध श्रावक था। उसने सुना कि—"अव्यक्तवादी निन्हव यहां

---

१ यह पद अशुद्ध ज्ञात पड़ता है।

जिसके पास कुछ भी अध्ययन किया हो वह गुरु चाहे अप्रसिद्ध हो या जाति तथा श्रुतादिकसे हीन हो फिर भी उसे गुरुके समान ही मानना चाहिये व अपना गौरव कदापि नही करना चाहिये । पंथकनामक शिष्यके सदृश गुरुका बहुमान करना चाहिये । उनके दोष ग्रहण नहीं करने चाहिये । निरन्तर गुरुसे शंकाता रहना चाहिये (भय रखते रहना चाहिये), निःशंकपन धारण नहीं करना चाहिये ।

श्री आम राजाने मातंगी स्त्रीका स्पर्श किया और वह हाल जब गुरुको मालूम हुआ तो राजाने मनमें विचार किया कि—"अहो ! मेरा अयोग्य कृत्य गुरुने जान लिया है अब मै गुरुको मुंह कैसे दिखलाउंगा ?" फिर उस पापकी शुद्धि करनेके लिए राजा तप्त लोहेकी मूर्तिको स्पर्श करनेके लिए भी तैयार हो गया इस बातका पता चलने पर गुरूने उसे श्लोक भेजकर बोधित किया । यह दृष्टान्त विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है ।

अपितु कुमारपाल राजाने सुके घेवर खाते हुए मांस भक्षणका स्वाद याद किया था । फिर तुरन्त ही ज्ञान आनेसे उन्होने विचार किया कि—" अहो ! मैने यह अयोग्य विचारा है यदि इस बातका पता गुरूको लग जायगा तो मेरा जीवन धिकारका पात्र हो जायगा ।" ऐसा विचारकर राजा उसके दांत उखाड फैकने को तत्पर हो गया तब उसके श्रावक प्रधानोंने उसे उपदेश देकर ऐसा करनेसे रोका । फिर उसने गुरूसे कराये प्रायश्चितमें घेबरके रंग और आकारका

वन्दना करनेवाले हम श्रमण निर्ग्रंथ हैं ।" इस प्रकार बारंबार कहने लगे । अपितु उन्होंने कहा कि—"हे साधु-राज ! हम चिरकालसे भ्रांतिको आज आपने सन्मार्ग दिखलाया ।" यह सुन कर राजाने नम्रतासे कहा कि—तुमको प्रतिबोध करनेके लिये जो मैंने अयोग्य कार्य किया है उसके लिए आप सब क्षमा करना ।" ऐसा कह कर उस श्रेष्ठ राजाने सर्व साधुओंसे वन्दना की । वे साधुभी फिरसे बोधित होकर पूर्ववत पृथ्वी पर विहार करने लगे ।

महावीर स्वामी के निर्वाण पश्चात दोसो चोदह वर्ष मे उत्पन्न हुए तीसरे निन्हवकी यह कथा कही है ।

सूत्रके योगवहन की क्रियामें अपने शिष्योंको विघ्न न हो ऐसा विचार कर श्रुतकी भक्तिमें आशक्त आपाढ़ देवताने स्वर्गसे आकर उनकी क्रिया पूर्ण कराई ।

"हे तपस्वियो ! इस प्रकार उपधान नामक शुभाचारका वर्णन सुन कर आगम के अनुसार उस उपधान विधिमें आदर कीजिये ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ नवदशस्तंभस्य द्विषष्ट्यधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२६२॥]

व्याख्यान २६३

अनिन्हव नामक पांचवां आचार

श्रुताक्षरप्रदातॄणां, गुरुणां च श्रुतादीनाम् ।
अनिन्हवोऽयमाचारः, पंचमः श्रीजिनैः स्तुतः ॥१॥

"श्रुतके अक्षरका ज्ञान कराने वाले गुरुओंकी ... नहीं करनी चाहिये । पांचवां

और श्रु

आचार

जिसके पास कुछ भी अध्ययन किया हो वह गुरु चाहे अप्रसिद्ध हो या जाति तथा कुलादिकसे हीन हो फिर भी उसे गुरुके समान ही मानना चाहिये व अपना गौरव कदापि नहीं करना चाहिये । पंडितनामक शिल्पीके सदृश गुरुका बहुमान करना चाहिये । उसके दोष ग्रहण नहीं करने चाहिये । निरन्तर गुरुसे शंकाता रहना चाहिये (भय रखते रहना चाहिये), निःशंकपन धारण नहीं करना चाहिये ।

श्री आम राजाने मातंगी स्त्रीका स्पर्श किया और यह हाल जब गुरुको मालूम हुआ तो राजाने मनमें विचार किया कि—"अहो ! मेरा अयोग्य कृत्य गुरुने जान लिया है अब मैं गुरुको मुंह कैसे दिखलाऊंगा ?" फिर उस पापकी शुद्धि करनेके लिए राजा तप्त लोहेकी मूर्तिका स्पर्श करनेके लिए भी तयार हो गया इस बातका पता चलने पर गुरुने उसे श्लोक भेजकर बोधित किया । यह दृष्टान्त विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है ।

अपितु कुमारपाल राजाने सुके घेवर खाते हुए मांस भक्षणका स्वाद याद किया था । फिर तुरन्त ही ज्ञान आनेसे उन्होने विचार किया कि—" अहो ! मैंने यह अयोग्य विचारा है यदि इस बातका पता गुरुको लग जायगा तो मेरा जीवन धिक्कारका पात्र हो जायगा ।" ऐसा विचारकर राजा उसके दांत उखाड फैंकने को तत्पर हो गया तब उसके श्रावक प्रधानोंने उसे उपदेश देकर ऐसा करनेसे रोका । फिर उसने गुरुसे कराये प्रायश्चितमें घेवरके रंग और आकारका

एक हजार और चउदह स्तंभवाला नवीन प्रासाद कराया। अन्य धर्ममें भी कहा है कि :—

एकाक्षरप्रदातारं, यो गुरुं नाभिमन्यते।
श्वानयोनिशतं गत्वा, चंडालेष्वभिजायते ॥१॥

भावार्थ :-"जो पुरूष एक अक्षर भी सिखाने वाले (पढानेवाले) गुरूको गुरूके रूपमें नहीं मानता वह सो वार कुत्तेकी योनिमें जन्मकर चंडालके योनिमें उत्पन्न होता है।"

इसीप्रकार श्रुतादिककी भी निन्दा नहीं करना चाहिये जिसके पास जितना श्रुत पढा हो उतना ही कहना परन्तु उससे न्यूनाधिक नहीं कहना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे मृषावाद, मनका कालुष्य और ज्ञानातिचार आदि दोष प्राप्त हो जाते हैं। गुरू और श्रुतकी निन्दा करनेसे रोहगुप्त साधुके समान सब गुणोंकी हानि हो जाति है।

रोहगुप्त की कथा

अन्तरिकापुरीके उपवनमें श्रीगुप्त आचार्य गच्छसहित रहे थे। उस पुरीमें बलश्री नामक राजा राज्य करता था। आचार्यका रोहगुप्त नामक एक शिष्य दूसरे गांवमे रहा था। वह गुरूको वांदनेके लिये उस पुरिमें आया। वहां कोई तपस्वी लोहके पाटेसे अपना पेट बांध कर जांबुनके वृक्षकी शाखा हाथमें लेकर नगरीमे घुमता था। उसे देखकर लोगोंने पूछा कि, "यह क्या है" तब उस तपस्वीने कहा कि, "मेरा उदर बहुत ज्ञानसे भर गया है इसलिये उसके फट-जानेके भयसे उसे लोहके पटेसे बांध दिया है और सम्पूर्ण

जंबूद्वीपमे मेरा प्रतिवादी कोई नही है ऐसा जाननेके लिए यह जंबूवृक्षकी डाली हाथमें रखी है।" फिर उस तपस्वीने, "सम्पूर्ण नगरी शून्य है। सब परप्रवादी हैं परन्तु मेरा प्रतिवादी कोई नही है" ऐसी घोषणा कर सम्पूर्ण नगरीमें जयघोष किया। उस घोषको नगरीमे प्रवेश करते हुए रोहगुप्तने देखा और घोषणा सुनि। इस पर "मैं इसके साथ वाद करुंगा" ऐसा कह कर रोहगुप्त ने उस पड़हका निवारण किया फिर उसने गुरूके पास जा वन्दना पूर्वक वाद करनेकी शर्तका वर्णन किया। जिसे सुन कर गुरूने कहा कि, "तूने यह काम ठिक नहीं किया क्योंकि वह अनेको विद्यासे भरपूर है इसलिये यदि वादमें वह पराभव पा जायेगा तो मंत्रविद्यासे प्रतिवादी को उपद्रव करेगा। वह विद्या इस प्रकार है कि:-

वृश्चिकान् पन्नगानाखून्, मृगशूकरवायसान्।
शकुनिकांश्च कुरुते, स हि विद्याभिरुद्भटान् ॥१॥

भावार्थ :-" वह तपस्वी विद्याद्वारा अति उद्भटवीछि, सर्प, उंदर, मृग, सुअर, कौआ और शकुनि आदिको विकुर्वित करता हैं।"

उसे सुन रोहगुप्तने कहा कि-"ऐसा होनेपर भी अब भागकर कहां जाये? उस पटहको तो मैंने निवारणकर दिया है अब तो जो कुज होना होगा सो होगा" गुरूने कहा कि-"यदि ऐसा ही निश्चय हो तो मात्र पाठ करनेसे ही सिद्ध हो ऐसी और उसकी विद्याको नाश करनेवाली इन सात विद्यातुओंकोग्रहण कर।

एक हजार और चउदह स्तंभवाला नवीन प्रासाद कराया। अन्य धर्ममें भी कहा है कि :—

> एकाक्षरप्रदातारं, यो गुरुं नाभिमन्यते ।
> श्वानयोनिशतं गत्वा, चंडालेष्वभिजायते ॥१॥

भावार्थ :-"जो पुरुप एक अक्षर भी सिखाने वाले (पढानेवाले) गुरुको गुरुके रूपमें नहीं मानता वह सो वार कुत्तेकी योनिमें जन्मकर चंडालके योनिमें उत्पन्न होता है।"

इसीप्रकार श्रुतादिककी भी निन्दा नहीं करना चाहिये जिसके पास जितना श्रुत पढा हो उतना ही कहना परन्तु उससे न्यूनाधिक नहीं कहना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे मृषावाद, मनका कालुष्य और ज्ञानातिचार आदि दोप प्राप्त हो जाते हैं। गुरु और श्रुतकी निन्दा करनेसे रोहगुप्त साधुके समान सब गुणोंकी हानि हो जाति है।

रोहगुप्त की कथा

अन्तरिकापुरीके उपवनमें श्रीगुप्त आचार्य गच्छसहित रहे थे। उस पुरीमें बलश्री नामक राजा राज्य करता था। आचार्यका रोहगुप्त नामक एक शिष्य दूसरे गांवमे रहा था। वह गुरुको वांदनेके लिये उस पुरिमें आया। वहां कोई तपस्वी लोहके पाटेसे अपना पेट बांध कर जांबुनके वृक्षकी शाखा हाथमें लेकर नगरीमे घुमता था। उसे देखकर लोगोंने पूछा कि, "यह क्या है" तब उस तपस्वीने कहा कि, "मेरा उदर बहुत ज्ञानसे भर गया है ईसलिये उसके फट-जानेके भयसे उसे लोहेके पटेसे बांध दिया है और सम्पूर्ण

जंबूद्वीपमें मेरा प्रतिवादी कोई नहीं है ऐसा जाननेके लिए यह जंबूवृक्षकी डाली हाथमें रखी है।" फिर उस तपस्वीने, "सम्पूर्ण नगरी शून्य है। सब परप्रवादी हैं परन्तु मेरा प्रतिवादी कोई नहीं है" ऐसी घोषणा कर सम्पूर्ण नगरीमें जयघोष किया। उस घोषको नगरीमें प्रवेश करते हुए रोहगुप्तने देखा और घोषणा सुनि। इस पर "मैं इसके साथ वाद करुंगा" ऐसा कह कर रोहगुप्त ने उस पटहका निवारण किया फिर उसने गुरुके पास जा वन्दना पूर्वक वाद करनेकी बातका वर्णन किया। जिसे सुन कर गुरुने कहा कि, "तूने यह काम ठिक नहीं किया क्योंकि यह अनेको विद्यासे भरपूर है इसलिये यदि वादमें वह पराभव पा जायेगा तो मंत्रविद्यासे प्रतिवादी को उपद्रव करेगा। वह विद्या इस प्रकार है कि:-

वृश्चिकान् पन्नगानाखून्, मृगशूकरवायसान्।
शकुनिकांश्च कुरुते, स हि विद्याभिरुद्भटान्॥१॥

भावार्थ :-" वह तपस्वी विद्याद्वारा अति उद्भटवीछि, सर्प, उंदर, मृग, सुअर, कौआ और शकुनि आदिको विकुर्वित करता है।"

उसे सुन रोहगुप्तने कहा कि-"ऐसा होनेपर भी अब भागकर कहां जाये? उस पटहको तो मैंने निवारणकर दिया है अब तो जो कुछ होना होगा सो होगा" गुरुने कहा कि-"यदि ऐसा ही निश्चय हो तो मात्र पाठ करनेसे ही ... हो ऐसी और उसकी विद्याको नाश करनेवाली ...

केकिना नकुला ओतु-व्याघ्रसिंहाश्च कौशिकाः ।
श्येनाश्च याभिर्जायन्ते, तद्विद्याबाधकाः क्रमात् ॥१॥

भावार्थः-"इन सात विद्याओंसे अनुक्रमसे उसकी विद्याको नष्ट करनेवाले मोर, नोलिया, बिल्ली, बाघ, सिंह, घुवड और बाज पक्षी उत्पन्न होते हैं ।"

फिर उन सात विद्याओंको देकर तदुपरान्त गुरुने ओघामंत्र कर उसे दिया और कहा कि-"यदि कदाच क्षुद्र विद्यासे वह तपस्वी अन्य कोई भी उपद्रव करे तो उसके निवारणके लिए तू यह ओघा तेरे सिरपर घुमा लेना ऐसा करने पर स्वयं इन्द्र भी तुझे न जीत सकेगा ।" फिर वह रोहगुप्त राजसभामें गया । वहां जाकर उसने कहा कि, "इस भिक्षुक तपस्वीमें क्या ज्ञान है इसलिये प्रथम उसको ही उसकी इच्छानुसार पूर्व पक्ष करना चाहिये जिसका मैं उत्तर दूंगा ।" यह सुनकर तपस्वीने विचारा कि-"ये साधु बहुत निपुण होते हैं इसलिये इन्होंके संमत पक्षका आश्रय लेकर मुझे बोलना चाहिये कि जिससे वे उसका निराकरण कर ही नही सकते ।" ऐसा विचारकर उसने कहा कि-"इस दुनियामें जीव और अजीव ऐसी दो ही राशी है ऐसा ही देखा जाता है इसलिये धर्म और अधर्म, द्रव्य और भाव आदिकी दो दो राशिके समान[1] ।" यह सुनकर रोहगुप्तने वादिका पराभव करनेके लिए अपने संमत पक्षको

---

[1] यहां वादी तीन वाक्य बोलते हैं । उनमे प्रथम वाक्य पक्ष दुसरा हेतु और तीसरा दृष्टान्त कहलाता है । ये तीनो मिलकर अनुमान प्रमाण हुआ है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ।

भी छोड़ कर उसको असत्य साबित करनेके लिए कहा कि, "तूने जो हेतु बतलाया है व दूसरी प्रकारसे देखा जाता है इसलिये वह असिद्ध है दुनियामे जीव, अजीव और नोजीव ऐसी तीन राशी देखनेमे आती है जिसमें नारकी तिर्यंच आदि जीव, परमाणु घट आदि अजीव और गरोळी की काटी हुई पूंछ आदि नोजीव है । ईसलिये जीव, प्रकार दिखाई देती है इसलिये अधम, मध्यम और उत्तम राशि के सदृश आदि अनेक युक्तियों द्वारा उसके प्रश्नोका उत्तर देकर जीव अजीव और नोजीव ये तीन राशिये सिद्ध होती है और इस प्रकार उस तपस्विको उसने पराजित किया । इसलिये उस साधुने क्रोधित होकर वृश्चिक विद्याद्वारा रोहगुप्तका विनाश करनेके लिए वींछी छोडे, उन वीछियोंका नाश करनेके लिये रोह-गुप्तने मयूर विद्या द्वारा मोर छोड़ा जिसने वीछियोंको मार डाला । तब तपस्वीने सर्प छोडा उस पर रोहगुप्तने नोलिए छोडे । इसप्रकार चूहे पर बिलाड़ा, मृग पर वाघ, सुअर पर सिंह, और कौए पर घुवड छोडा । जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर तपस्वीने अत्यन्त दुष्ट समलिये छोड़ी, जिसपर साधुने वाज छोडकर उन्हें हटा दिया । उसे देख तपस्वीने अति क्रोधसे [1]रासभी छोडी । उसे आती देखकर साधु अपने शरीरके चारों ओर ओघा घुमाना आरंभ किया और उससे उस रासभीको मारा जिससे प्रभावरहित होकर वह रासभी तापस पर मूत्र, पुरीष कर भग गई । यह सब देखकर सभापति राजाने तथा सभाके

---

१ गधेडी

राजसभामें गये । वहां सत्य मार्गकी प्ररूपणा कर शिष्य द्वारा किये प्रश्नोंका आगम के अनुसार इस प्रकार निवारण किया कि-"सूत्रमें जीव और अजीव ऐसी दोही राशिका कथन है अपितु धर्मास्तिकाय के प्रदेश ये धर्मास्तिकायादिक से कोई भिन्न नही हैं परन्तु विवक्षा मात्रसेही उनके भिन्न वस्तुपनकी कल्पना की गई है । इसी प्रकार पूंछादिक भी गरोली आदि जीवोंसे अभिन्न हैं । वे जीव सम्बन्धी होनेसे जीव ही हैं, नो जीव नही है । इसके विपयमें श्री भगवती सूत्रमें कहा गया है कि-" हे भगवन् ! कछुआ या कछुएकी श्रेणी, गरोली या गरोलीकी श्रणी, वृपभ या वृपभकी श्रेणी, मनुष्य या मनुष्यकी श्रेणी, पाड़ा या पाडेकी श्रेणी, उनके दो खंड, तीन खंड यावत् संख्याता खंड छेदकर किये जाये तो उनके आंतरामें जीव प्रदेश प्रगट (स्फुट) पनसे है ? प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! प्रगटपनसे हैं । फिर गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवंत ! कोई पुरुप उस आंतरामें रहे जीव प्रदेशको हाथ द्वारा, पग द्वारा, काष्ट-द्वारा, तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा छेदता हुआ अथवा अग्निकाय द्वारा जलाता हुआ उसको कोई अल्पबाधा या विशेप बाधा उपजा सकता है ? प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, निश्चय उसको आक्रमण नहीं कर सकता है"

यहां शिष्य प्रश्न करते हैं कि-" गरोलीका देह और पूंछ के बीचमें भी जीव प्रदेश हैं ऐसा सूत्र में कहा गया है तो वे वीचमें रहे जीव प्रदेश क्यों नहीं जान पडते ?"

आकाश 'गृहाकाश' कहलाता है इसी प्रकार स्थान भेदसे नोजीव कहनेमें क्या बाधा है ? " गुरूने उत्तर दिया कि, "यदि ऐसा कहा जाय तो 'नो अजीव' नामक चोथी राशि भी तुझे माननी होगी क्योंकि आकाशादिक अजीव हैं, उसके भी प्रदेश संभव है, इसलिये उन प्रदेशोंको स्थानभेद की विवक्षासे नो अजीव कहना पडेगा । और ऐसा करनेसे चार राशि हो जायगी । परन्तु जैसे लक्षण के समानपनसे नोजीव जीवसे भिन्न नहीं है उसी प्रकार समान लक्षण होनेसे नोअजीव भी अजीवसे भिन्न नहीं है"

इस प्रकार उन गुरू शिष्य को वाद करते छ महिने व्यतीत हो गये । तब राजाने गुरुसे कहा कि-"हे स्वामी ! अब वाद समाप्त कीजिये क्योंकि इसकी व्यग्रतासे मेरे राज कार्यमें बाधा आती है ।" तब गुरूने कहा कि-" अब तक मैंने इस शिष्यको मात्र क्रिड़ा कराई है परन्तु अब प्रातः काल में अवश्य इसका निग्रह करुंगा ।" फिर दूसरे दिन गुरूने राजासे कहा कि-" इस दुनियामे जितनी वस्तुऐं हैं वे सब कुत्रिककी दुकान पर मिलती है ये तुम सब लोग जानते हो इसलिये हम वहां चले और नो जीवकी याचना करें ।"

यहां "कुत्रिक" शब्दका यह अर्थ होता है कि- "कु" अर्थात् पृथ्वी और 'त्रिक' अर्थात् तीन, अर्थात् स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीन पृथ्वीका नाम 'कुत्रिक' हुआ इस नामकी दुकान होनेसे 'कुत्रिकापन' शब्द होता है ।

यहां द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समवाय इन छ मूल पदार्थों के भेद कल्पना की है। इनमे पांच [1]महाभूत काल, दिशा, आत्मा और मन ये नो प्रकार द्रव्य को किये हैं। रूप, रस, संख्या, बुद्धि, द्वप आदि सत्तर भेद गुणके उत्क्षेपण,[2] अपक्षेपण[3], आकुंचन,[4] प्रसारण[5] और गमन[6] ये पांच भेद कर्म के किये। तीन प्रकारका सामान्य किये और एक एक प्रकार विशेष तथा समवायका ग्रहण किया। ये मिलकर छत्तीस भेद हुए। इन सबका प्रकृति,[7] अकार[8] नोकार,[9] और दोनोंका निषेध[10] इस प्रकार चार चार प्रकार किये। इसलिये सब भेद एकसो चुमालीस हुए। फिर जब कुत्रिकापन देवको पास जाकर पृथ्वी मांगी तब उसने पाषाण दिया क्योकि वह प्रकृतिजात उपपद रहित शुद्ध पृथ्वी है। अपृथ्वी मांगी तब जल आदि दीया नो पृथ्वी मांगी तब "नो" शब्द के 'कम निषेध' और 'सर्वथा निषेध' ऐसे दो अर्थ कर कम निषेध के लिये पृथ्वी का टुकडा दिया और सर्वथा निषेध के लिये जल आदि दिया। और नो पृथ्वी पृथ्वी मांगी तब उसने पृथ्वी (पाषाण आदि) दिये क्योकि नो अजीव के समान नो अपृथ्वी का अर्थ भी ही होता है। इस प्रकार जल आदि में भी चार चार भेद समझों निश्चयनय के मतानुसार तो जीव और अजीव ये दोही

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश ये पांच महाभूत कहलाते है। २ ऊंचाफेंकना. ३. नीचेफेंकना, ४ संकुचित होजाना, ५. विस्तृत करना, ६. जाना, ७. मूलशब्द, ८. अल्पनिषेधवाचक, ९ सर्वथानिषेधवाचक और १० निषेधका निषेध (मूल शब्द)

इस दुकान पर बैठे वणिक गृहस्थ ने मंत्रादिकके आराधन से किसी व्यंन्तर देवको सिद्ध किया है । वह देवता ग्राहक को इच्छित प्रत्येक वस्तु किसी भी स्थान से लाकर देता है और उसकी कीमत वह वणिक लेता है । यहां किसीका मत ऐसा भी है कि–यह वणिककी दुकानही देवाधिष्टित है इसलिये वस्तुकी किमत वह देवताही ले जाता है । फिर गुरू सर्व परिवार सहित उस कुत्रिका पण जाकर रोह गुप्तको पूछ कर कुत्रिकापन के व्यन्तर देवसे कहा कि– "जीव दो" तब उसने तोता, मैना आदि जीव दिये । फिर गुरूने अजीव मांगा तब उसने पत्थरके खंड आदि दिये । फिर नोजीव मांगा तबभी पत्थर आदि ही दिये क्यों कि 'नो' शब्दका अर्थ निषेध वाचक है अर्थात् अजीव और नोजीवमे कोई भेद नही है । अन्तमें गुरूने नो अजीव मांगा तब उसका अर्थ जीव करके उस देवताने तोते आदि दिये क्योंकि 'नो' और "अ" ये दो निषेध वाचक होनेसे अजीव नही वह जीव कहलाता है । ऐसा "नो अजीव" शब्दका अर्थ होता है । नोजीव मांगते समय उस देवताने जीवका कोई भी हिस्सा नहीं दिया इससे जीव और अजीव ये दोही राशिये सिद्ध होती हैं । परंतु गार के श्रृंग की तरह तीसरी राशि असत् होनेसे सिद्ध न हो सकी । फिर गुरूने शिष्य से कहा कि:– "हे भाई ! अब तू तेरा दुराग्रह छोड दे । भाई जगत मे कोई नोजीव वस्तु होती तो वह देवता क्यों नहीं देता ? इस प्रकार एक सौ चमालीस प्रश्न करके राजाके समक्ष गुरूने उस शिष्य का निग्रह किया ।

यहां द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समवाय इन छ मूल पदार्थों के भेद कल्पना की है। इसने पांच महाभूत[1] काल, दिशा, आत्मा और मन ये नौ प्रकार द्रव्य तो किये हैं। रूप, रस, संख्या, बुद्धि, सुख आदि सत्रह भेद गुणके उत्क्षेपण,[2] अपक्षेपण[3], आकुंचन,[4] प्रसारण[5] और गमन[6] ये पांच भेद कर्म के किये। तीन प्रकारका सामान्य किये और एक एक प्रकार विशेष तथा समवायका ग्रहण किया। ये मिलकर छत्तीस भेद हुए। इन सबका प्रकृति,[7] अकार[8] नोकार,[9] और दोनोंका निषेध[10] इस प्रकार चार चार प्रकार किये। इसलिये सब भेद एकसौ चुमालीस हुए। फिर जब कुत्रिकापन देवको पास जाकर पृथ्वी मांगी तब उसने पाषाण दिया क्योंकि यह प्रकृतिजात उपपद रहित शुद्ध पृथ्वी है। अपृथ्वी मांगी तब जल आदि दीया नो पृथ्वी मांगी तब "नो" शब्द के 'कम निषेध' और 'सर्वथा निषेध' ऐसे दो अर्थ कर कम निषेध के लिये पृथ्वी का टुकड़ा दिया और सर्वथा निषेध के लिये जल आदि दिया। और नो पृथ्वी पृथ्वी मांगी तब उसने पृथ्वी (पाषाण आदि) दिये क्योंकि नो अजीव के समान नो अपृथ्वी का अर्थ भी ही होता है। इस प्रकार जल आदि में भी चार चार भेद समझो निश्चयनय के मतानुसार तो जीव और अजीव ये दोही

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश ये पांच महाभूत कहलाते है। २ ऊँचाफेंकना. ३. नीचेफेंकना, ४ संकुचित होजाना, ५. विस्तृत करना, ६. जाना, ७. मूलशब्द, ८. अल्पनिषेधवाचक, ९ सर्वथानिषेधवाचक और १० निषेधका निषेध (मूल वस्तु)

पदार्थ हैं। इस प्रकार गुरुने उसे अनेक प्रकारसे समझाया परंतु जब उसने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा तब गुरुने कचरा डालने की कुंडी मे से भस्म ले कर उसके सिर पर डाली और उसे गच्छसे बाहर निकाल दिया। राजा उस शिष्य का शाठ्य देखकर क्रोधित हुआ और उसने नगरमे ऐसी उद्-घोषणा कराई कि:-"गुरु के प्रतिपक्षी रोहगुप्त को जो मान्य करेगा वह राजद्रोही माना जायेगा।" फिर उस रोह गुप्तने उसकी बुद्धिसे वैशेषिक शास्त्र बनाया।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण पश्चात् पांचसो चुमालीस वर्ष में यह छट्ठा निन्हव हुआ उसका वृत्तान्त कहा गया है।

"समस्त जगत षट् द्रव्यसे पूर्ण है ऐसा जिनेश्वरने देखा है उसका उत्थापन करने वाला और द्रव्य गुण आदि छ प्रकार का तत्त्व साबित कर उसका विस्तार करने वाला तथा अपने तीन राशी के पक्षका स्थापन करनेवाला वैशेषिक छट्ठा निन्हव हुआ है।"

देव, गुरु और धर्मादिक का उत्थापन करता हुआ यह वैशेषिक महान हानि को प्राप्त हुआ अतः इस पांचवें दुःषमकाल में सब के [illegible] किसी को [illegible] नहीं होना चाहिये।

[illegible] ॥५६३॥

विक्रम सं. २०१८ वीर सं. २४८८ इस्वी सं. १९६१
प्रथमावृत्ति प्रत १००० मूल्य रू.|५-००

-: प्राप्तिस्थान :-
श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय
शिवगंज (राजस्थान) मारवाड
स्टेशन एरनपुरा रोड

-: मुद्रक :-
डाह्याभाइ ह. पटेल
श्री खडायता मुद्रण कला मंदिर
कंदोईनीवाडी, घीकांटा रोड,
अमदावाद-१

समर्पण

परम पूज्य संविग्नशाखाग्रणी सकलागमरहस्यवे
सुविहिताचार्य १००८ पूज्य गुरुदेव श्री

विजय हर्षसूरीश्वरजी महाराज

卐

अनादि भवचक्रमां अज्ञाननिद्राथी घेरेला एवा
मारा आत्माने आपे सर्वज्ञ शासननुं दर्शन
करावी मनुष्य भव ए मोक्षस्थाननी
मोसम रूप छे. ते समजावी
चारित्र मार्गमां मने जोडी
उपकार कर्यो, ते निःसीम उपकारी
आपने आ ग्रंथ
समर्पण करुं छुं

-: समर्पक :-
पं. मंगलविजय